मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

तीसरी बार : १९४९

मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
वियोगी हरि
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली

नवीन संस्करण पर दो शब्द

'बुद्ध-वाणी' का यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। बौद्ध साहित्यकी ओर इधर हिन्दी जगत्‌की खासी अभिरुचि बढ़ी है, इसमें संदेह नहीं। श्री राहुल सांकृत्यायन द्वारा कई अनुवादित ग्रंथ अबप्रकाशित हो चुके हैं। भदन्त श्री आनंद कौसल्यायनने भी सुप्रसिद्ध जातकों और महावंशके सुन्दर प्रामाणिक अनुवाद करके हिंदी-साहित्यकी बडी सेवा की है।

मित्रवर भदंत श्री आनंद कौसल्यायनने मनोयोगपूर्वक "बुद्ध-वाणी" का अवलोकन किया और अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधन सुझाये, जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

हरिजन-निवास, दिल्ली
दिसम्बर, १९४८

वियोगी हरि

ग्रन्थ संकेत-निर्देश

म. नि.	=	मज्झिम निकाय (राहुल सांकृत्यायन)
दी. नि.	=	दीघ निकाय
अं. नि.	=	अंगुत्तर निकाय
सं. नि.	=	संयुत्त निकाय
ध. प.	=	धम्मपद
सु. नि.	=	सुत्त निपात (धर्मानंद कौसांबी—गुजराती संस्करण)
बु. च.	=	बुद्धचर्या (राहुल सांकृत्यायन)
बु. ली.	=	बुद्धलीला (धर्मानंद कौसांबी—गुजराती संस्करण)
बु. दे.	=	बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा)

विषय-निर्देश

प्रस्तावना

आचार्य काका कालेलकरने एक जगह लिखा है कि "बुद्ध भगवान् की शिक्षा आजके युगके लिए विशेष रीतिसे अनुकूल है, विशेष रीतिसे पोषक है।" संसारमें आज हर चीजका बड़ी बारीकीसे विश्लेषण हो रहा है। विश्लेषणकी कसौटीपर जो चीज खरी नहीं उतरती, उसे अपनाने क्या छूने तक में दुनिया अब आनाकानी करने लगी है। मानवताके मूलमें ओत-प्रोत धर्म फिर इस व्यापक छानबीनसे, इस बौद्धिक क्रांतिसे अछूत कैसे रह सकता था? संसारके छोटे-बडे धर्म-मजहबोंका भी इधर कुछ वर्षोंसे स्वतंत्र दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन होने लगा है। और इसीसे काका कालेलकरने वर्तमान शताब्दीको 'धर्म मंथन-काल' कहा है। आज इस धर्म-मंथन-कालमें इलहामका 'आर्डिनेंस' मानने को मनुष्यकी आत्मा तैयार नहीं, यद्यपि कभी-कभी अध-अश्रद्धावश आवेशमें वह अविवेकका भी प्रदर्शन कर बैठती है। शुद्ध बौद्धिक कसौटीपर कसते समय यह देखा जाता है कि वह धर्म समभाव और समन्वयका कहाँतक समर्थक है, वैषम्य और द्वेषकी आगको यह उत्तेजन तो नहीं दे रहा है, और सर्वसाधारणका 'कल्याण' उसके द्वारा कहातक संपादित होता है। किन्तु इस धर्मतुलाको मैं एकदम नई कसौटी कहने के पक्षमें नहीं हू। धर्मकी यह तराजू उतनी ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन हमारी प्रज्ञा है। कई सदियोंतक हमारे अधर्म-मूलक दुराग्रह ने इस अनमोल चीजको ओझल जरूर कर रखा था और कुछ अंशोंमे आज भी कर रखा है, पर जगत्के क्रांतदर्शी संतों और महापुरुषोंने अपना शोधन-कार्य तो सदा जारी ही रखा। समय-समयपर उन्होंने मनुष्यकी बुद्धिपर पडा हुआ वह विभेदक पर्दा उठाया और उससे कहा कि "देख, धर्मका सच्चा सनातन रूप यह है, एष धर्मः सनातनः।" भगवान् बुद्धने तो अत्यंत स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि "आओ, और अपनी 'प्रज्ञा की आंखसे' धर्मको देखो—एहि पश्यक धर्म।" यही

कारण है कि बुद्ध भगवान्‌की शिक्षा आजके युगके लिए विशेष रीतिसे अनुकूल है और विशेष रीतिसे पोषक है ।

जहां अन्य धर्मोंने-पात्रमें रखी जानेवाली 'वस्तु' के विवेचनमें अपने दार्शनिक ज्ञानकी सारी पूंजी खर्च कर डाली है, वहां बौद्धधर्म में पात्रकी सम्यक् शुद्धिपर ही सबसे अधिक जोर दिया गया है और यही इस मानव-धर्मकी सबसे बडी विशेषता है। और इसीसे आस्तिक और नास्तिक दोनों ही इस कल्याणमूलक धर्ममें समान समाधान पाते हैं। कोई विवाद नहीं, कोई कलह नहीं। अष्टांगिकमार्गी या अंतःशुद्धिका साधक द्वेषमूलक वाद-विवादसे अलग ही रहेगा। मैत्री, मुदिता, उपेक्षा और करुणाके शीतल जलमें जिस मनुष्यने अपना रोम-रोम भिगो लिया है, वह विवाद, द्वेष, परिग्रह और कलह की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता । वह किसके साथ तो राग करे और किसके साथ द्वेष ?

यह सही है कि रूढ़िप्रिय मनुष्यकी अंतड़ियोंके घातक फोड़े में बुद्ध भगवान्‌ने नश्तर लगाया था और उससे वह एकबार क्रुद्ध हो चीख उठा था। पर वहां भी भगवान्‌की असीम करुणाको शल्यात्रिद्ध मनुष्यके अंतर की पीडा हरनी थी, उसका सारा सडा मवाद निकालना था, उसका हृदय-घट शुद्ध करना था। रोगीके प्रलाप और अभिशापसे भगवान् डर जाते, तो उसे 'ब्रह्म-विहार' का आनंदलाभ कैसे होता ? पीछे, जब आँखें खुलीं, तो अपने महाकारुणिक चिकित्सकको उसने जगत् का उद्धारक ही नहीं, ईश्वरका अवतार तक माना और उसकी श्रद्धावनत अंतरात्मा से बरबस ये शब्द निकल पड़े—

बुद्धं शरणं गच्छामि;
धर्मं शरणं गच्छामि;
संघं शरणं गच्छामि।

×

समयके फेरसे बौद्धधर्म आज अपनी जन्मभूमि भारतमें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसका सर्वथा लोप हो गया है। हमारे राष्ट्रपर, हमारे जीवनपर आज भी उस महान् मानव-धर्मकी अमिट छाप लगी हुई है। भले ही हम अपनेको प्रत्यक्षमें बौद्ध न कहें, पर बौद्धधर्मका प्रेरणाप्रद प्रभाव हम भारतवासियोंके जीवनमें परोक्षतः कुछ-न-कुछ काम तो कर ही रहा है। प्रयागमें आज तीसरी नदीका प्रत्यक्ष दर्शन कहां होता है, पर त्रिवेणी के एक एक कणका महत्त्वऔर अस्तित्व उस लुप्तधारा सरस्वतीकी ही बदौलत बना हुआ है।

पर इस तरह आत्म-संतोष कर लेने से काम नहीं चलेगा। भगवान् बुद्धका हमारे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है। बौद्ध-वाङ्मयके प्रति हमारी यह उदासीनता सचमुच अक्षम्य है। हमारी राष्ट्रभाषाका बौद्ध साहित्य-के प्रकाशनमें तीसरा नंबर आता है। वह हमारे लिए भारी लज्जा और दुःखका विषय नहीं तो क्या है? बंगभाषाका बौद्ध साहित्यके प्रकाशन में प्रथम स्थान है। उसके बाद स्यात् मराठीका नंबर है। मराठीमें आचार्य धर्मानद कौसॉबीने बड़ी योग्यता और विद्वत्तापूर्वक अनेक पाली ग्रंथोंका अत्यंत सुन्दर अनुवाद किया है। कौसाबीजीके कुछ बौद्ध ग्रंथोंका गुजराती भाषातर भी प्रकाशित हो चुका है। हिंदीमें तो दो-तीन साल पहले, सिवा चार-पाच बुद्ध-जीवनियों और धम्मपदके तीन-चार अनुवादोंके, कुछ था ही नहीं। इधर बेशक इस दिशामें हिंदीने अच्छी प्रगति की है। महापंडित त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल साकृत्यायनने समस्त 'त्रिपिटक' (सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक) का हिंदी-अनुवाद करने का निश्चय किया है। 'मज्झिम निकाय'—का अनुवाद तो प्रकाशित भी हो गया है। श्री साकृत्यायनजी द्वारा संपादित आचार्य वसुबंधुरचित 'अभिधर्मकोश' भी प्रकाशित हो चुका है। यदि यही क्रम जारी रहा तो श्री साकृत्यायनजीके कथनानुसार मूल बौद्ध-साहित्यके अनुवादमें हिंदीका

स्थान भारतीय भाषाओंमें ही प्रथम नहीं हो जायगा, बल्कि हमारी मातृभाषा यूरोपीय भाषाओंसे टक्कर लेने लगेगी।

अब दो शब्द प्रस्तुत पुस्तकपर। धम्मपदका मैं एक जमाने से भक्त हूँ। इधर श्री धर्मानंद कौसाम्बी और श्री राहुल सांकृत्यायनके अनुवादित ग्रन्थ देखकर तो मैं 'कुसलस्स उपसंपदा'—वाले बुद्ध-शासन पर मुग्ध हो गया हूँ। 'सुत्तनिपात' दो बार पूरा पढ़ा, तो भी तृप्ति नहीं हुई। पुस्तक पढ़ते समय अपने अत्यंत प्रिय स्थलोंपर निशान लगाने की मेरी पुरानी आदत है। पढ़ते-पढ़ते मुझे सूझा कि भगवान् बुद्धकी सूक्तियोंका लगे हाथों एक छोटा-सा विषयवार संग्रह क्यों न कर डाला जाय? मित्रोंमें चर्चा की तो उन्होंने मुझे प्रोत्साहन दिया। उसी इच्छा और प्रोत्साहन का परिणाम यह 'बुद्ध-वाणी' नामक सूक्ति-संग्रह है।

आरंभमें आर्यसत्य-चतुष्टय, अष्टांगिक मार्ग, स्मृत्युपस्थान आदि बौद्धधर्मके मूल विषय कदाचित् पाठकोंको ऊपरसे कुछ नीरस-से लगें, पर थोड़ा मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे, तो इन दार्शनिक सूक्तियोंमें उन्हें आत्म-तृप्तिकर आनंद-रस मिले बिना न रहेगा। अंत में 'सूक्तिकण' एक खंड दिया है, जिसमें विविध विषयोंकी सूक्तियोंका संग्रह किया गया है। पाठकोंसे मेरा आग्रह है कि सूक्ति-कणको वे अवश्य आद्योपात पढ़ें।

कौन सूक्ति किस ग्रंथसे ली गई है इसका निर्देश मैंने प्रत्येक सूक्ति-संग्रह-विभागके अंतमें कर दिया है। पुस्तक के अंतमें बौद्ध साहित्यमें प्रयुक्त खास-खास पारिभाषिक शब्दोंका एक संक्षिप्त कोश भी दे दिया है।

'बुद्ध-वाणी' ने लोगोंके हृदयमें यदि बौद्ध-वाङ्मयके निर्मल सरोवरमें अवगाहन करने की थोड़ी भी लालसा जगाई, तो मैं अपना यह तुच्छ प्रयास सफल समझूंगा।

दिल्ली
श्रावण, सं० १९९२

—वियोगी हरि

बुद्ध-वाणी

: १ :

बुद्ध-शासन

१. सारे पापोंका न करना, 'कुशल धर्मों', अर्थात् पुण्योंका संचय करना और अपना चित्त परिशुद्ध रखना—यही बुद्धोंकी शिक्षा है।

❀

२. बुद्धोंकी यह शिक्षा है —

(१) निंदा न करना;

(२) हिंसा न करना;

(३) आचार नियम द्वारा अपनेको संयत रखना;

(४) मित भोजन करना;

(५) एकान्तमें वास करना;

(६) चित्तको योगमें लगाना।

---

१. सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनम्॥

२. अनूपवादो अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पंतञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धानसासनं।

१—२.ध. प. (बुद्धवग्गो)

: २ :

महामंगल

१. मूर्खोंके सहवाससे दूर रहना, सत्पंडितोंका सत्संग करना और पूज्य जनोंको पूजना ही उत्तम मंगल है।

२. अनुकूल प्रदेशका वास, पूर्वजन्मके पुण्य और सन्मार्गमें मनकी दृढ़ता—यही उत्तम मंगल है।

३. विद्या और कलाका संपादन, सदव्यवहारका अभ्यास तथा सुभाषण—यही उत्तम मंगल है।

४. माता-पिताकी सेवा, स्त्री-पुत्रादिकी संभाल और व्यवस्थित रीतिसे किये हुए कर्म— यही उत्तम मंगल है।

५. आदर, नम्रता, संतुष्टि, कृतज्ञता और समय-समयपर सद्धर्मका सुनना—यही उत्तम मंगल है।

६. क्षमा, मधुर भाषण, संतोंका सत्संग और समय-समयपर धर्मचर्चा यही उत्तम मंगल है।

७. तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्योंका* ज्ञान तथा निर्वाणपदका साक्षात्कार—यही उत्तम मंगल है।

---

*दुःख, दुःख-समुदाय, दुःख-निरोधका मार्ग इन चार सत्यों को भगवान् बुद्धने 'आर्यसत्य-चतुष्टय' कहा है।

१—८. सु. नि. (महामंगल सुत्त)

: ३ :

आर्यसत्य-चतुष्टय

१. पहला आर्यसत्य दुःख है। जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है. अप्रियका मिलना दुःख है, प्रियका बिछुड़ना दुःख है, इच्छित वस्तुका न मिलना दुःख है। संक्षेपमें, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान यह पंचोपादान स्कंध (समुदय) ही दुःख है।

२. दुःख समुदाय नामका दूसरा आर्यसत्य. यह तृष्णा है जो पुनर्भवादि दुःखका मूल कारण है। यह तृष्णा रागके साथ उत्पन्न हुई है। सासारिक उपभोगों की तृष्णा, स्वर्गलोकमे जानेकी तृष्णा और आत्महत्या करके संसारसे लुप्त हो जानेकी तृष्णा इन तीन तृष्णाओं से मनुष्य अनेक तरह का पापाचरण करता है और दुःख भोगता है।

३ तीसरा आर्यसत्य दुःखनिरोध है। यह प्रतिसर्गमुक्त और अनालय है। तृष्णाका निरोध करनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है, देहदंड या कामोपभोगसे मोक्षलाभ होने का नहीं।

४. चौथा आर्यसत्य दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है। इसी आर्यसत्यको अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। वे अष्टाग ये हैं —

(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक समाधि।

दुःखका निरोध इसी मार्गपर चलनेसे होता है।

५ दुःख नामक पहला आर्यसत्य पूर्व समयमें कभी नहीं सुना गया था। यह दुःख नामक आर्यसत्य परिज्ञेय है।

६. दुःखसमुदाय नामका दूसरा आर्यसत्य पूर्व समयमें कभी नहीं सुना गया था। यह दुःखसमुदय नामका आयसत्य त्याज्य है।

७ दुःखनिरोध नामका तीसरा आर्यसत्य पूर्व समयमे कभी नहीं सुना गया था। यह दुःखनिरोध नामका आर्यसत्य साक्षात्करणीय कर्तव्य है।

८. दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा नामका चौथा आर्यसत्य पूर्व समयमें नहीं सुना गया था। यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्यसत्य भावना करने योग्य है।

९. इस 'आर्यसत्य चतुष्टय' से मेरे अंतरमें चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक की उत्पत्ति हुई।

१०. जबसे मुझे इन चारों आर्यसत्योंका यथार्थ सुविशुद्ध ज्ञानदर्शन हुआ, मैंने देवलोकमें, मारलोकमें, ब्रह्मजगत् और ब्राह्मणीयप्रजामें, देवों और मनुष्योंमें यह प्रकट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि* प्राप्त हुई और मैं अभिसंबुद्ध हुआ, मेरा चित्त निर्विकार और विमुक्त हो गया और यह अब मेरा अंतिम जन्म है।

११. परिव्राजकको इन दो अंतों (अतिसीमा) का सेवन नहीं करना चाहिए। वे दोनों अंत कौन हैं? पहला अंत है काम-वासनाओंमें काम-सुखके लिए लिप्त होना। यह अंत अत्यन्त हीन, ग्राम्य, निकृष्ट जनोंके योग्य, अनार्य्य और अनर्थकारी है। दूसरा अंत है शरीरको दंड देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्यसेवित और अनर्थयुक्त है। इन दोनों अंतोंको त्यागकर मध्यमा प्रतिपदा का मार्ग (अष्टांगिक मार्ग) ग्रहण करना चाहिए। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षुदायिनी और ज्ञानप्रदायिनी है। इससे उपशम, अभिज्ञान, सम्बोधन और निर्वाण प्राप्त होता है।

---

* परमज्ञान, मोक्षज्ञान

१—११. बु. च. (धर्मचक्रप्रवर्तन सूत्र)

: ४ :

अष्टांगिक मार्ग

१. सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि—ये आर्य अष्टांगिक मार्ग हैं।

२. सम्यक् दृष्टि, दुःखका ज्ञान, दुःखोदयका ज्ञान, दुःख-निरोध-का ज्ञान और दुःख-निरोधकी ओर ले जाने वाले मार्गका ज्ञान, इस आर्य-सत्य-चतुष्टयके सम्यक् ज्ञानको सम्यक् दृष्टि कहते हैं।

३ सम्यक् संकल्प, निष्कर्मता-संबन्धी, अर्थात् अनासक्ति-संबंधी संकल्प, अहिंसा-संबंधी संकल्प और अद्रोहसंबंधी संकल्पको सम्यक् सकल्प कहते हैं।

४. सम्यक् वचन, असत्य वचन छोडना, पिशुन वचन अर्थात् चुगलखोरी छोड़ना, कठोर वचन छोडना और बकवाद छोड़ना सम्यक् वचन है।

५. सम्यक् कर्मांत, प्राणिहिंसासे विरत होना, बिना दी हुई वस्तु न लेना और कामोपभोगके मिथ्याचार (दुराचार) से विरत होना ही सम्यक् कर्मांत है।

६. सम्यक् आजीव, आजीविकाके मिथ्या साधनोंको छोड़कर अच्छी सच्ची आजीविकासे जीवन व्यतीत करना सम्यक् आजीव है।

७. सम्यक् व्यायाम, 'अकुशल' धर्म, अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के लिए निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना, चित्तको पकड़ना और रोकना तथा कुशल धर्म, अर्थात् सत्कर्मकी उत्पत्ति, स्थिति, विपुलता और परिपूर्णताके लिए निश्चय, उद्योग आदि करना ही सम्यक् व्यायाम है।

८. सम्यक् स्मृति, अशुचि, जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मोंका अनुभव करना तथा उद्योगशील अनुभवज्ञानयुक्त हो लोभ और मानसिक सतापको छोड़कर जगत्में विचरना ही सम्यक् स्मृति है।

९. सम्यक समाधि, कुशल धर्मों अर्थात् सन्मनोवृत्तियोंमे समाधान रखना ही सम्यक् समाधि है।

१०. इस सम्यक् समाधिकी प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान-रूपी चार सीढ़ियाँ हैं।

पहले ध्यानमें वितर्क, विचार, प्रीति (प्रमोद) सुख और एकाग्रता होते हैं।

दूसरे ध्यानमें वितर्क और विचारका लोप हो जाता है; प्रीति, सुख और एकाग्रता ये तीन मनोवृत्तियाँ ही रहती हैं।

तीसरे ध्यानमे प्रीतिका लय हो जाता है; केवल सुख और एकाग्रता ही रहती है।

चौथे ध्यानमे सुख भी लुप्त हो जाता है; उपेक्षा और एकाग्रता ही रहती है।

११. अमृतकी ओर ले जानेवाले मार्गों मे अष्टांगिक मार्ग परम मंगलमय मार्ग है।

१२. दुःख आर्यसत्य, दुःख-समुदय आर्यसत्य, दुःखनिरोध आर्यसत्य और दुःखनिरोधगामीमार्ग आर्यसत्य, इन चार आर्यसत्योंका ज्ञान न होने से युगानुयुगोंतक हम सब लोग संसृतिके पाशमें बंधे पड़े थे। किन्तु अब इन आर्यसत्योंका बोध होनेसे हमने दुःखकी जड खोद निकाली है और हमारा पुनर्जन्मसे छुटकारा हो गया है।

१—१०. दी. नि. (महासतिपट्ठान सुत्त) ११. म. नि. (मागंदिय सुत्तन्त) ११. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

: ५ :

जागृतिके चार साधन

(चार स्मृत्युपस्थान)

१. शुद्ध होने के लिए, शोक और दुःखसे तरने के लिए, दौर्मनस्य (मानसिक दुःख) का नाश करने के लिए, सन्मार्ग प्राप्त करने के लिए और निर्वाणपदका साक्षात् करने के लिए चार स्मृति-उपस्थानोंका मार्ग ही एकमात्र सच्चा मार्ग है।

२. चार स्मृति-उपस्थान ये हैं—

(१) अपनी देहका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करना;

(२) वेदनाका* यथार्थ रीतिसे अवलोकन करना;

(३) चित्तका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करना;

(४) मनोवृत्तियोंका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करना।

ये चार स्मृति-उपस्थान अर्थात् जागृतिके श्रेष्ठ साधन हैं।

३. अरण्यमें वृक्षके नीचे अथवा एकांतमें पालथी मारकर गर्दनसे कमरतक शरीर सीधा रखकर भिक्षु जागरूक रहकर श्वास खींचता है और प्रश्वास बाहर निकलता है, उसका आश्वास और प्रश्वास दीर्घ है या ह्रस्व, इसकी उसे पूर्ण स्मृति होती है, जागृतिपूर्वक वह अपने प्रत्येक आश्वास-प्रश्वासका अभ्यास करता है।

जिस प्रकार वह आश्वास और प्रश्वासको सम्यक् रीतिसे जानता है, उसी प्रकार वह अपनी देहका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है।

४. चलते समय वह यह स्मरण रखता है कि 'मैं चल रहा हूं'; खड़ा होता है तो 'मैं खड़ा होता हूं' यह स्मरण रखता है; जब बैठा होता

---

* इंद्रिय और विषयके एकसाथ मिलने के बाद जो दुःख-सुख आदि अनुभव होता है।

है तब यह स्मरण रखता है कि 'मैं बैठा हूं' लेटा होता है तो 'मैं लेटा हूं' यह स्मरण रखता है। उसे देहकी समस्त क्रियाओंका ज्ञान होता है।

इस तरह वह अपनी देहका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करता है।

५. वह अपनी देहका नखसे शिखातक अवलोकन करता है। केश, रोम, नख. दांत, त्वचा, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, मूत्राशय, कलेजा, यकृत, तिल्ली, फेफड़े, आंत, अंतड़ियां, विष्ठा, पित्त, कफ, पीब, रक्त, पसीना, मेद, आँसू, चरबी, थूक, लार और मूत्र ऐसी-ऐसी अपवित्र चीज़े इस देहमें भरी हुई हैं!

कायानुपश्यी योगी अपनी देहमें भरे हुए इन तमाम अपवित्र पदार्थों-का उसी प्रकार एक-एक करके अवलोकन करता है जिस प्रकार कि हम विविध अनाजोंकी पोटलीको खोलकर देख सकते हैं, कि इसमें यह चावल है, यहमूंग है, यह उड़द है, यह तिल है और यह धान है।

६. वह कायानुपश्यी भिक्षु मरघटमें जाकर अनेक तरहके मुर्दोंको देखता है। कोई मुर्दा सूजकर मोटा हो गया है, किसी मुर्देको कौओं, कुत्तों और सियारोंने खाकर और नोच-नाचकर छिन्न-भिन्न कर डाला है, तो-किसीकी केवल शख-सी सफेद हड्डिया ही पड़ी हुई हैं। ऐसे भयावने मुर्दों-की तरफ देखकर वह यह विचार करता है कि 'मेरी देहकी भी एक दिन यही गति होनी है। यह हो नहीं सकता कि मेरी देह इस नश्वर स्थितिसे मुक्त हो जाय।

वह यह स्मरण रखता है कि यह देह जब पैदा हुई है तब एक-न-एक दिन तो इसका नाश होगा ही। देह नाशवान् है, इसका उसे हमेशा स्मरण रहता है।

वह अनासक्त हो जाता है। दुनियामें किसी भी वस्तुकी उसे आसक्ति नहीं रहती।

इस प्रकार वह अपनी देहका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करता है।

७. कोई भिक्षु अपनी वेदनाओंका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करता है। जब वह सुखकारी वेदनाका अनुभव करता है, तो वह समझता है कि मैं सुखद वेदनाका अनुभव कर रहा हूँ।

और जब दुःखकारी वेदनाका अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मैं दुःखद वेदनाका अनुभव कर रहा हूँ।

जब वह सुख-दुःख-रहित वेदनाका अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मैं सुख-दुःख-रहित वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

उसे इस बातका स्मरण रहता है कि वह इस वेदनाका लोभसे अनुभव कर रहा है या अलोभ से।

-इस प्रकार वह आतंरिक और बाह्य वेदनाका यथार्थ रीतिसे अवलोकन करता है। वह देखता है कि वेदना जब पैदा हुई है तब नाश उसका अवश्य होगा।

उसे यह स्मरण रहता है कि उसके शरीरमें वेदना है।

स्मृति और ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वह वेदनानुपश्यी योगी अनासक्त हो जाता है। इस लोककी किसी भी वस्तुमें वह आसक्ति नहीं रखता।

८. कोई भिक्षु अपने चित्तका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है। मेरा चित्त सकाम है या निष्काम, सद्वेष है या विगतद्वेष, समोह है या वीतमोह- संक्षिप्त है या विक्षिप्त, समाहित (एकाग्र) है या असमाहित, विमुक्त है या अविमुक्त, आदि सभी-अवस्थाओंको वह जानता है। इस प्रकार वह अपने और पराये चित्तका अवलोकन करता है।

वह जानता है कि चित्तका स्वभाव चंचल है।

इस प्रकार वह चित्तानुपश्यी भिक्षु चित्तका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है।

९. कोई भिक्षु अपनी मनोवृत्तियोंका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है। वह इस बातकी ठीक-ठीक शोध करता है कि उसके अंतःकरणमें काम-

विकार, द्वेषवृद्धि, आलस्य, अस्वस्थता और संशय, ये ज्ञानके पाँच आवरण हैं या नहीं।

इन आवरणोंकी उत्पत्ति कैसे होती है, इनके उत्पन्न होने पर इनका विनाश किस तरह होता है और इनके फिरसे उत्पन्न न होनेका क्या उपाय है, इस सबको वह जानता है।

इस प्रकार इन पाँच मनोवृत्तियोंका वह यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है।

१०. फिर वह पाँच स्कंधोंका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कंधोंका उदय और अस्त कैसे होता है यह वह जानता है।

इस प्रकार वह धर्मानुपश्यी भिक्षु आभ्यंतर और बाह्य स्कंधोंका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है।

११. फिर वह चक्षु, रूप इत्यादि आध्यात्मिक और बाह्य आयतनोंका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है। चक्षु और रूप, कर्ण और शब्द, नासा और गंध, त्वचा और स्पर्श, मन और मनोवृत्ति इनके संयोगमें कौन-कौन-से संयोजन पैदा होते हैं, और उनके उत्पन्न होने पर उन संयोजनोंका नाश कैसे होता है, और संयोजन फिर उत्पन्न न हों इसका क्या उपाय है इस सबको वह जानता है।

१२. फिर वह सात बोध्यंगों का यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है। स्मृति, धर्मप्रविचय (धर्मसंचय), वीर्य (उद्योग), प्रीति, प्रश्रब्धि (शांति), समाधि और उपेक्षा ये सात धर्म मेरे अंतःकरणमें हैं या नहीं यह वह जानता है। यदि नहीं हैं तो ये सबोध्यंग किस प्रकार उत्पन्न किये जा सकते हैं, और उत्पन्न हुए संबोध्यंगोंकी भावना किस प्रकार पूरी होती है, यह सब वह जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियोंका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है।

१३. इसके अतिरिक्त वह भिक्षु चार आर्यसत्योंका यथार्थरीतिसे अवलोकन करता है।

यह दुःख है, यह दुःख का समुदाय है, यह दुःखका निरोध है और यह दुःख निरोधका मार्ग है, यह वह यथार्थरीतिसे जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियोंका यथार्थ-रीतिसे अवलोकन करता है।

१४. इन चार स्मृति-उपस्थानोंकी ऊपर कहे अनुसार सात वर्षतक भावना करनेसे भिक्षुको 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी। अधिक नहीं तो, वह 'अनागामी' तो हो ही जायगा, उसे फिर इस लोकमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा।

१५ सात वर्ष जाने दो, ऊपर कहे अनुसार जो भिक्षु इन चार स्मृति-उपस्थानोंकी भावना छः वर्ष, पाँच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, इतना भी नहीं, तो सात मास, छः मास, पाँच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, या सात ही दिन यथार्थरीतिसे करेगा, तो उसे 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी—और नहीं तो वह अनागामी तो हो ही जायगा।

१६. इन चार स्मृति-उपस्थानोंका मार्ग शोक और कष्टके उपशमन-के लिए, दुःख और दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिए, ज्ञानकी प्राप्ति के लिए और निर्वाणके साक्षात्कार के लिए ही एकमात्र मार्ग है।

१—१६. म.नि. (सतिपट्ठान सुत्तन्त)

: ६ :

सप्त धर्मरत्न

१. धर्मके इन सात रत्नोंको तुम लोग अवश्य धारण करो—(१) स्मृत्युपस्थान, (२) सम्यक् प्रधान (प्रयत्न) (३) ऋद्धिपाद, (४) इंद्रिय, (५) बल, (६) बोध्यंग, और (७) मार्ग।

२. स्मृत्युपस्थान चार प्रकारका है—(१) शरीर के प्रति जागरूक रहना (२) वेदनाओंके प्रति जागरूक रहना. (३) चित्तके प्रति जागरूक रहना. (४) धर्मोंके प्रति जागरूक रहना, इन चारोंके स्मरण और भावना को चतुर्विध स्मृत्युपस्थान कहते हैं।

३. सम्यक् प्रधान चार प्रकारका है—(१) सद्गुणोंका संरक्षण, (२) अलब्ध सद्गुणका उपार्जन, (३) दुर्गुणोंका परित्याग और (४) नूतन दुर्गुणोंकी अनुत्पत्तिका प्रयत्न।

४. ऋद्धिपाद अर्थात् असाधारण क्षमताकी प्राप्तिके लिए (१)दृढ़ संकल्प, (२) चिंता अथवा उद्योग, (३) उत्साह और (४) आत्मसंयम करना।

५. इंद्रियाँ पाँच हैं— (१) श्रद्धा, (२) समाधि. (३) वीर्य, (४) स्मृति और (५) प्रज्ञा।

६. बल भी पाँच हैं—(१) श्रद्धाबल, (२) समाधिबल, (३) वीर्यबल (४) स्मृतिबल और (५) प्रज्ञाबल।

७. बोध्यंग सात हैं—(१) स्मृति, (२) धर्मप्रविचय (धर्मान्वेषण) या पुण्य; (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि अर्थात् शांति, (६) समाधि और (७) उपेक्षा।

८. मार्ग आठ अंगोंवाला है— (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम; (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।

९. इन सैंतीस पदार्थोंको लेकर मैंने धर्मकी व्यवस्था की है। इन्हें मैंने 'सप्तत्रिंशत् शिक्षमाण धर्म' कहा है।

१— ९. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

: ७ :

ब्रह्म-विहार

१. मैत्री, करुणा मुदिता और उपेक्षा— इन चार मनोवृत्तियोंको 'ब्रह्म-विहार' कहते हैं।

२. मैत्रीपूर्ण चित्तसे, करुणापूर्ण चित्तसे, मुदितापूर्ण चित्तसे और उपेक्षापूर्ण चित्तसे जो भिक्षु चारों दिशाओंको व्याप्त कर देता है, सर्वत्र समस्त जगत्को अवैर और अद्वेषमय चित्तसे भर देता है उसे मैं 'ब्रह्मप्राप्त' भिक्षु कहता हूँ।

*

३. मैत्रीचित्तविमुक्तिकी प्रेमपूर्वक इच्छा करनेसे, भावना करनेसे, अभिवृद्धि करनेसे, स्थापना करनेसे, उसका अनुष्ठान करनेसे, और उसे उत्साहपूर्वक अंगीकार करनेसे मनुष्यको ये ग्यारह लाभ होते हैं:—

वह सुखपूर्वक सोता है; सुखसे जागता है; बुरे स्वप्न नहीं देखता; सबका प्रिय होता है; भूत-पिशाचोंका भय नहीं रहता; देवता उसकी रक्षा करते हैं; अग्नि, विष या हथियार उसपर कोई असर नहीं कर सकते; चित्त तुरन्त एकाग्र हो जाता है; मुखकी काति अच्छी रहती है; शातिसे मरता है; और, निर्वाण न भी मिले, तो भी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक-को तो जाता ही है।

*

४. भिक्षुओ, मै जानकर ही जान-बूझकर किये गये कर्मोंके अंत करने की वात कहता हूँ, वह इसी जन्ममे हो अथवा भविष्यमें हो। अतः आर्यश्रावक (गृहस्थ) लोभसे, द्वेषसे और मोहसे विमुक्त होकर सचेत अंतःकरणके द्वारा मैत्रीयुक्त चित्तसे, करुणायुक्त चित्तसे, मुदितायुक्त चित्तसे और उपेक्षायुक्त चित्तसे चारों दिशाओंको अभिव्याप्त कर देता है; अखिल जगतको अवैर और द्वेषरहित मैत्रीसहगत चित्तसे अभिव्याप्त कर देता है।

वह समझता है कि पूर्वमें इन भावनाओंके न करनेसे मेरा चित्त संकुचित था। पर अब उत्तम रीतिसे इस मैत्री भावना, इस करुणा भावना, इस मुदिता भावना और इस उपेक्षा भावना के करनेसे वह असीम और अनंत हो गया है। जो भी मर्यादित कर्म मेरे हाथसे हुआ होगा, वह अब इन अमर्यादित भावनाओंके कारण शेष नहीं रह सकता, वह इन भावनाओंके सामने टिक नहीं सकता।

५ मनुष्य यदि छुटपनसे ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-चित्तविमुक्तिकी भावना करे, तो उसके हाथसे पापकर्म होगा ही क्यों? और वह पाप नहीं करेगा, तो फिर उसे दुःख क्यों भोगना पड़ेगा?

६. यह मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-चित्तविमुक्तिकी भावना क्या पुरुष क्या स्त्री सभीको करनी चाहिए।

१—२ अं. नि. (चतुक्कनिपात) ३ अं. नि. (मेत्तसुत्त) ४—६. अं. नि. (दसक निपात; करज काय वग्गो)

: ८ :

सत्य

१. असत्यवादी नरकगामी होते हैं, और वे भी नरकमें जाते हैं, जो करके 'नहीं किया' कहते हैं।

२. जो मिथ्याभाषी है. वह मुंडित होनेमात्रसे श्रमण नहीं हो जाता।

*

३. जिसे जान बूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं, उसका साधुपना औंधे घड़ेके समान है: साधुताकी एक बूंद भी उसके हृदय-घटके अंदर नहीं।

४. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं वह कोई भी पाप कर सकता है। इसलिये तू यह हृदयमें अंकित करले, कि मैं हँसी-मजाकमें भी कभी असत्य नहीं बोलूँगा।

५. जितनी हानि शत्रु शत्रुकी, और वैरी वैरी की करता है मिथ्या मार्गका अनुगमन करनेवाला चित्त उससे कहीं अधिक हानि पहुँचाता है।

*

६. सभामें, परिषद्में अथवा एकांतमें किसीसे झूठ न बोले; झूठ बोलनेके लिए दूसरोंको प्रेरित न करे, न झूठ बोलनेवालेको प्रोत्साहन दे—असत्यका सर्वांशमें परित्याग कर देना चाहिए।

*

७. अगर कोई हमारे विरुद्ध झूठी गवाही देता है, तो उससे हमें अपना भारी नुकसान हुआ मालूम होता है। इसी तरह अगर असत्य-भाषणसे मैं दूसरोंकी हानि करूँ, तो क्या वह उसे अच्छा लगेगा? ऐसा विचार करके मनुष्यको असत्य-भाषणका परित्याग कर देना चाहिए, और दूसरोंको भी सत्य बोलनेका उपदेश करना चाहिए। सदा ईमानदारी की ही सराहना करनी चाहिए।

*

८. असत्यका कदापि आश्रय न ले। न्यायाधीशने गवाही देनेके लिए बुलाया हो तो वहाँ भी जो देखा है उसीको कहें, कि 'मैंने देखा है;' और जो बात नहीं देखी, उसे 'नहीं देखी' ही कहे।

*

९. सत्यवाणी ही अमृतवाणी है; सत्यवाणी ही सनातनधर्म है। सत्य, सदर्थ और सद्धर्मपर संतजन सदैव दृढ़ रहते हैं।

*

१०. सत्य एक ही है, दूसरा नहीं। सत्यके लिए बुद्धिमान लोग विवाद नहीं करते।

११. ये लोग भी कैसे हैं! साम्प्रदायिक मतोंमें पड़कर अनेक तरहकी दलीलें पेश करते हैं, और सत्य और असत्य दोनोंका ही प्रतिपादन कर देते हैं! अरे, सत्य तो जगतमें एक ही है, अनेक नहीं।

१२. जो मुनि है, वह केवल सत्यको ही पकड़कर और दूसरी सब

वस्तुओंको छोड़कर संसार-समुद्रके तीरपर आ जाता है। उसी सत्यनिष्ठ मुनिको हम शांत कहते हैं।

१-२. ध. प. (निरय वग्गो) ३-४ बु. च. (राहुलोवाद सुत्त) ५. ध. प. (चित्त वग्गो) ६. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ७. बु. ली. सं (पृष्ठ २५५) ८. म. नि. (सालेयक सुत्त) ९. सु. नि. (सुभासित सुत्त) १०-११. सु. नि. (चूलवियूह सुत्त) १२. सु. नि. (अत्तदंड सुत्त)

: ६ :

अहिंसा

१. 'जैसा मै हूँ वैसे ही वे हैं और जैसे वे हैं वैसा ही मैं हूँ' इस प्रकार सबको अपने जैसा समझकर न किसीको मारे, न मारनेको प्रेरित करे।

*

२. जहाँ मन हिंसासे मुड़ता है, वहाँ दुःख अवश्य ही शांत हो जाता है।

*

३. अपनी प्राण-रक्षाके लिए भी जान-बूझकर किसी प्राणीका वध न करे।

*

४. मनुष्य यह विचार किया करता है कि मुझे जीनेकी इच्छा है, मरनेकी नहीं; सुखकी इच्छा है, दुःखकी नहीं। यदि मै अपनी ही तरह सुखकी इच्छा करनेवाले प्राणीको मार डालूँ, तो क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी? इसलिए मनुष्यको प्राणिघातसे स्वयं तो विरत हो ही जाना चाहिए, उसे दूसरोंको भी हिंसासे विरत करानेका प्रयत्न करना चाहिए।

*

५. वैरियोंके प्रति वैररहित होकर, अहा ! हम कैसा आनंदमय जीवन बिता रहे हैं, वैरी मनुष्योंके बीच अवैरी होकर विहार कर रहे हैं !

६. पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा और बुढ़ापा। पशुकी हिंसासे बढ़ते-बढ़ते वे अट्ठानवे हो गये।

ये याजक, ये पुरोहित निर्दोष पशुओंका वध कराते हैं, धर्मका ध्वंस करते हैं। यज्ञके नामपर की गई यह पशु-हिंसा निश्चय ही निंदित और नीच कर्म है। प्राचीन पंडितोंने ऐसे याजकों की निंदा ही की है।

७. पहलेके ब्राह्मण यज्ञमें गाय का हनन नहीं करते थे। जैसे माता, पिता, भ्राता और दूसरे बंधु-बांधव हैं, वैसे ही ये गायें हमारी परम मित्र हैं। ये अन्न, बल, वर्ण और सुख देनेवाली हैं।

८. 'किंतु मानुष भोगोंको देखकर कालांतर में ये ब्राह्मण भी लोभग्रस्त हो गये उनकी भी नीयत बदल गई। मंत्रोंको रच-रचकर वे इक्ष्वाकु (ओक्काक) राजाके पास पहुँचे, और उसके धनैश्वर्यकी प्रशंसा करके उसे पशु-यज्ञ करनेके लिए प्रेरित किया। उन्होंने उससे कहा, 'जैसे पानी, पृथिवी धन और धान्य प्राणियोंके उपभोगकी वस्तुएँ हैं, उसी प्रकार ये गायें भी मनुष्योंके लिए उपभोग्य हैं। अतः तू यज्ञ कर।'

९. तब उन ब्राह्मणोंसे प्रेरित होकर रथर्षभ राजाने लाखों निरपराध गायोंका यज्ञमें हनन किया। जो बेचारी न पैरसे मारती हैं न सींग से, जो भेड़ की नाईं सीधी और प्यारी हैं, और जो घड़ाभर दूध देती हैं, उनके सींग पकड़कर राजाने शस्त्रसे उनका वध किया।

१०. यह देखकर देव, पितर, इंद्र, असुर और राक्षस चिल्ला उठे, 'अधर्म हुआ, अधर्म हुआ, जो गायके ऊपर शस्त्र गिरा !'

---

१. सु नि. (नालक सुत्त) २. ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) ३. बु. च. (सीह सुत्त) ४. बु. ली. सं० (पृष्ठ २५५) ५. ध.प. (सुख वग्गो) ६—१०. बु. च. (ब्राह्मण धम्मिक सुत्त)

: १० :

अमृत की खेती

१. मैं भी कृषक हूँ। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उसपर तपश्चर्या की वृष्टि होती है।

प्रज्ञा मेरा हल है। ह्री (पाप करनेमें लज्जा) की हरिस, मनकी जोत और स्मृतिकी फालसे मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूँ।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योग-क्षेम मेरा अधिवाहन है। इस हलको मैं नित्य निरन्तर निर्वाणकी दिशामें चलाया करता हूँ।

२. मै यही कृषि करता हूँ। इस कृषिसे कृषकको अमृतफल मिलता है, और वह समस्त दुःखोंसे मुक्त हो जाता है।

१—२. सु. नि. (कसिभारद्वाज सुत्त)

: ११ :

मैत्री-भावना

१. शातपदके जिज्ञासु एवं आत्महित-कुशल मनुष्य का कर्तव्य यह है कि उसे सहनशील, सरलातिसरल, मधुरभाषी, मृदु और निरहंकारी बनना चाहिए।

२. हमें कोई ऐसा क्षुद्र आचरण नहीं करना चाहिए, जिससे कि सुज्ञ-जन हमें दोष दें। हमें सदा यही भावना करनी चाहिए कि जगत् के समस्त प्राणी सुखी, सक्षेम और सानन्द रहें।

३. चर हों या स्थावर, बड़े हो या छोटे, दृष्ट हों या अदृष्ट, हमसे दूर रहते हो या पास, जगत् में जितने भी प्राणी हों वे सब आनंदित रहें।

४. न हम एक दूसरेको धोखा दें, न किसी जगह एक दूसरेका अप्र-मान करें, और न खीज या द्वेषबुद्धिसे एक दूसरेको दुःख देनेकी मनमें इच्छा रखें।

५. माता जिस प्रकार अपने स्नेह-सर्वस्व पुत्रको अपना जीवन खर्च करके भी पालती है उसी प्रकार समस्त प्राणियोंके प्रति हमें असीम प्रेम रखना चाहिए।

६. सर्व प्राणियोंके प्रति हमें ऊपर, नीचे और चारों ओर असंबाध, अवैर और असपत्न मैत्रीकी असीम भावना बढ़ानी चाहिए।

७. खड़े हों तब, चलते हों तब, बैठे हों तब या लेटे हों तब, जबतक नींद न आ जाय, तबतक हमें इस मैत्री भावनाकी स्मृति स्थिर रखनी चाहिए।

*

इसी अवस्थाको इस लोकमें 'ब्राह्म जीवन' कहते हैं।

८. जिस मनुष्यके मनसे लोभ, द्वेष और मोह ये तीन मनोवृत्तियाँ नष्ट होगई हैं, वही चारों दिशाओंमें प्राणिमात्रके प्रति मैत्री भाव प्रसारित कर सकता है। अपने मैत्रीमय चित्तसे चारों दिशाओंमें बसनेवाले समस्त प्राणियोंपर वह प्रेमकी रसवर्षा करता है। करुणा, मुदिता और उपेक्षाकी भावनाओंका उसे अनायास ही सुलाभ हो जाता है।

१—७. सु. नि. (मेत्त सुत्त) ८. अं. नि. (कालाम सुत्त)

: १२ :

अक्रोध

१. 'मुझे अमुक मनुष्यने गाली दी, अमुकने मुझे मारा, अमुकने मुझे पराजित किया, अमुकने मुझे लूट लिया' इस प्रकारके विचारकी जो लोग मनमें गाँठ बाँध लेते हैं, और वैर भँजानेकी इच्छा रखते हैं, उनका वैर-भाव कभी शांत नहीं होता।

२. वैर तो उन्हींका शांत होता है, जो इस प्रकारके विचार हृदयसे निकाल देते हैं कि 'मुझे अमुकने गाली दी, अमुकने मुझे मारा, अमुकने मेरा पराभव किया, अमुकने मुझे लूट लिया।'

३. वैरसे वैर कभी शात नहीं होता। वैर प्रेमसे ही शॉत होता है। यही सनातन नियम है।

*

४. 'दूसरे भले ही न समझें; पर हम इस कलहसे दूर ही रहेंगे,' ऐसा जो समझते हैं उनका द्वेष या कलह नष्ट हो जाता है।

५. लोगोंकी हड्डियाँ तोड डालनेवाले, दूसरोंका प्राण ले लेनेवाले, गाय, घोड़ा, धन-संपत्ति आदिका हरण करनेवाले और राष्ट्रमें विप्लव मचानेवाले लोग भी मेल कर लेते हैं, उनमें भी एका हो जाता है; तब तुम्हारा मेल क्यों नहीं होता?

*

६. किसीसे कटु वचन न बोलो। यदि बोलोगे, तो वह भी तुमसे वैसा ही कटु वचन बोलेगा। झगड़ेसे दुःख बढ़ता ही है। कटु वचन बोलनेसे, बदलेमें, तुम्हें दंड मिलेगा। टूटा हुआ कासा जैसे निःशब्द रहता है, उसी तरह अगर तुम स्वयं चुप रहोगे, तो तुम निर्वाणपद प्राप्त कर लोगे; तुम्हें कलह नहीं सतायगा।

*

७. क्षमाके समान इस जगत्में दूसरा तप नहीं।

*

८. जो चढ़े हुए क्रोधको चलते हुए रथकी तरह रोक लेता है, उसीको मैं सच्चा सारथी कहूँगा; और लोग तो केवल लगाम पकड़नेवाले हैं।

९. अक्रोधसे क्रोधको जीते, भलाईसे बुराईको जीते, कृपणको दानसे जीते, और झूठ बोलनेवालेको सत्यसे जीते।

१०. क्रोध करनेवालेके ऊपर जो क्रोध करता है, उसका खुद उससे अहित होता है; पर जो क्रोधका जवाब क्रोधसे नहीं देता, वह एक भारी युद्ध जीत लेता है। प्रतिपक्षीको क्रोधांध देखकर जो अत्यन्त विवेकके साथ शात हो जाता है, वह अपना और पराया दोनोंका ही हित-साधन करता है।

११. तुझे कोई गाली ही नहीं, तेरे गाल पर कोई थप्पड़ मारदे, या पत्थर या हथियारसे तेरे शरीरपर कोई प्रहार करे, तो भी तेरे चित्तमें

विकार नहीं आना चाहिए, तेरे मुँहसे गंदे शब्द नहीं निकलने चाहिए, तेरे मनमें उस समय भी तेरे शत्रु के प्रति अनुकंपा और मैत्रीका भाव रहना चहिए, और किसी भी हालतमें क्रोध नहीं आना चाहिए।

१२. मनुष्य तभीतक शांत और नम्र दीखता है, जबतक कोई उसके विरुद्ध अपशब्द नहीं कहता। पर जब उसे अपशब्द या निंदा सुननेका प्रसंग आता है, तभी इस बातकी परीक्षा हो सकती है, कि वह वास्तवमें शांत और नम्र है या नहीं।

१३. जो धर्मके गौरवसे धर्म को पूज्य मानकर शांत और नम्र होता है उसीको सच्चा शांत और उसीको सच्चा नम्र समझना चाहिए। अपना मतलब साधनेके लिए कौन शांत और नम्र नहीं बन जाता?

१४. कोई मौकेसे बोलता है तो कोई बेमौकेसे बोल देता है; कोई उचित बात कहता है तो कोई अनुचित बात कह देता है; कोई मधुर वचन बोलता है तो कोई कटु वचन बोलता है; कोई हितकी बात कहता है तो कोई अहितकी बात कहता है; कोई हितबुद्धिसे बोलता है तो कोई द्वेषबुद्धिसे बोलता है। इन सब प्रसंगोंपर तुम्हारा चित्त विकारके वश नहीं होना चाहिए, तुम्हारे मुँहसे गंदे शब्द नहीं निकलने चाहिएँ, तुम्हारे अंतःकरणमें दया-मैत्री रहनी चाहिए, क्रूरता और द्वेष नहीं; और तुम्हें ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि जिस मनुष्यने तुम्हारे विरुद्ध कोई बात कही है, उसे ही आधार बनाकर तुम समस्त संसारपर मैत्री-भावनाकी सतत वर्षा कर सको।

१५. यदि कोई टोकरी और कुदाली लेकर यह कहे कि 'इस तमाम पृथिवीको मैं खोदकर फेंक दूँगा!' दूसरा मनुष्य लाखका रंग, हल्दीका रंग और मजीठका रंग लेकर कहे कि 'इस समस्त आकाशको मैं रंग डालूँगा!' और तीसरा मनुष्य घासकी पूली सुलगाकर कहे कि 'इस गंगा नदीको मैं भस्म कर डालूँगा!' तो उन मनुष्योंके प्रयत्नोंका पृथिवी, आकाश या गंगा नदीपर कोई असर पड़नेका नहीं। इसी प्रकार दूसरे लोगोंके बोलनेका तुम्हारे हृदयपर तनिक भी बुरा असर नहीं पड़ना चाहिए।

१६. अगर चोर और लुटेरे आकर तुम्हारे शरीरके अंग आरेसे काटने लग जायँ, और उस अवसर पर तुम्हारे मनमें उन लुटेरोंके प्रति क्रोध या द्वेष आजाय, तो तुम मेरे सच्चे अनुयायी नहीं कहे जासकते।

ऐसे प्रसंगपर भी तुम्हारे मनमें द्वेष नहीं आना चाहिए, तुम्हारे मुंहसे बुरे शब्द नहीं निकलने चाहिएं, तुम्हारे अंतःकरणमें दया और मैत्रीकी भावना रहनी चाहिए और अपने शत्रुको आधारस्वरूप मानकर समस्त संसार पर तुम्हे निस्सीम मैत्री भावना करनी चाहिए।

१—३ ध. प. (यमक वग्गो). ४—५. म. नि. (उपक्किलेस सुत्तंत) ६. ध. प. (दंड वग्गो) ७. ध. प.(बुद्ध वग्गो). ८—६. ध. प. कोध वग्ग १०. बु. लो. सा. सं. (पृष्ठ ३०६) ११—१६. म. नि. (ककचूपम सुत्तंत)

: १३ :

तृष्णा

१. प्रमाद-रत मनुष्यकी तृष्णा लताकी भाँति बढ़ती ही जाती है। वह एक वस्तुसे दूसरी वस्तुतक इस तरह दौड़ती रहती है, जैसे वनमें वंदर एक फलके बाद दूसरे फलकी इच्छा करता है।

२. यह जहरीली तृष्णा जिसे जकड़ लेती है, उसके शोक वीरन घास की तरह बढ़ते ही जाते हैं।

३. इस दुर्जेय तृष्णाको जगतमें जो काबूमें कर लेता है, उसके शोक इस प्रकार झड़ जाते हैं, जिस प्रकार कमलके पत्ते परसे जलके विंदु।

४. जैसे जडके दृढ़ होनेके कारण और उसके नष्ट न होनेसे वृक्ष कटा हुआ भी फिरसे उग आता है, वैसे ही जबतक तृष्णाकी जड़ न कटे, तृष्णारूपी अनुशय (मल) नष्ट न हो, तबतक दुःख बराबर पैदा होता ही रहेगा।

५. ये रागयुक्त संकल्प सोतोंके रूपमें चारों ओर वह रहे हैं, जिनके कारण तृष्णारूपी लता अंकुरित होती और जड़ पकड़ती रहती है। जहाँ

भी कहीं तुम यह लता जड़ पकड़ती हुई देखो, वहीं प्रज्ञाकी कुल्हाड़ीसे उसकी जड़ काट डालो।

६. जालमें फँसे हुए खरगोशकी तरह तृष्णाके पीछे पड़े हुए ये प्राणी इधर-उधर चक्कर काटते रहते हैं। सयोजनों अर्थात् मनके बंधनों में जकड़े हुए ये मूढ़ लोग बराबर दुःख और क्लेश पाते हैं।

७. ये जो लोहे, लकड़ी या रस्सीके बंधन हैं इन्हें बुद्धिमान लोग दृढ़ बंधन नहीं कहते। इनकी अपेक्षा दृढ़ बंधन तो वह चिंता है, जो मणि, कुण्डल, पुत्र और कलत्रके लिए की जाती है।

८. जो मनुष्य रागमें रत रहते हैं वे अपनी ही बनाई धारामें इस प्रकार बह जाते हैं, जैसे मकड़ी अपने ही रचित जालमें फँस जाती है। धीर पुरुष इस धाराको काटकर समस्त आकांक्षाओं और दुःखोंसे रहित हो जाते हैं।

९. जो प्राणी तर्क-वितर्क आदि संशयोंसे पीड़ित है, और तीव्र रागमें फँसा हुआ है तथा सदा सुख-ही-सुखकी अभिलाषा करता है, उसकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है, और वह प्रतिक्षण अपने लिए और भी मजबूत बंधन तैयार करता जाता है।

१०. जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई, रागसे जो विमुक्त हो गया, जो शब्द और उसका अर्थ जानता है और जिसे अक्षरोंके क्रमका ज्ञान है, उसे 'महाप्राज्ञ' कहते हैं। निश्चय ही वह अंतिम शरीरवाला है, अर्थात् वह निर्वाण प्राप्त कर लेगा।

११. संसार-समुद्रके पार जानेका प्रयत्न न करनेवाले मूर्ख मनुष्यको ये ऐहिक भोग नष्ट कर देते हैं। भोगकी तृष्णामें फँसकर वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने आपका ही हनन करता है।

*

१२. तृष्णाका साथी बनकर बारबार जन्म लेनेवाला मनुष्य मनुष्यत्व अथवा मनुष्येतर भावको प्राप्त करके संसार-समुद्रको पार नहीं कर सकता।

१३. 'तृष्णासे दुःखकी उत्पत्ति होती है'—तृष्णामें यह दोष देख-

कर भिक्षुको चाहिए कि वह वीततृष्ण, आदानविरहित (अपरिग्रही) और स्मृतिमान् होकर प्रव्रज्या लेले।

१४. भवतृष्णाका उच्छेद कर देनेवाले शांतचित्त भिक्षुकी जन्म-परंपरा नष्ट हो जाती है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

*

१५. मनुष्य जितना ही कामादिका सेवन करता है, उतनी ही उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। कामके सेवनमें क्षणमात्रके लिए ही रसास्वाद मालूम देता है।

१—११. ध. प. (तण्हा वग्गो) १२—१४. सु. नि. (द्वयंतानुपस्सना सुत्त) १५. म. नि. (मागंदिय सुत्तंत)

: १४ :

अंतःशुद्धि

१. हे ब्राह्मण! इन लकड़ियोंको जलाकर तू क्यों शुद्धि मानता है? यह शुद्धि नहीं है। यह तो एक बाह्य वस्तु है। पंडित लोग इसे शुद्धि नहीं कहते।

मैं यह 'दारु-दाह' छोड़कर अपने अंदर ही ज्योति जलाता हूँ। नित्य अग्निवाला, नित्य एकांतचित्तवाला होकर मैं ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करता हूँ। यही सच्ची शुद्धि है।

२. हे ब्राह्मण! तेरा यह अभिमान खरियाका भार है, क्रोध धुआँ है, मिथ्या भाषण भस्म है, जिह्वा स्रुवा है और हृदय ज्योतिका स्थान है। अपने आपका दमन करनेपर ही पुरुषको यह ज्योति प्राप्त होती है। यही सच्ची आत्मशुद्धि है।

३. हे ब्राह्मण! शीलरूपी घाटवाले निर्मल धर्मसरोवरमें, जिसकी संतजन प्रशंसा करते हैं, नहाकर कुशलजन शुद्ध होते हैं। वे शरीरको बिना भिगोये ही पार उतर जाते हैं।

४. श्रेष्ठ शुद्धिकी प्राप्ति सत्य, धर्म, संयम और ब्रह्मचर्यपर निर्भर करती है।

*

५. अरे मूर्ख! यह जटा-जूट रखा लेनेसे तेरा क्या बनेगा, और मृगचर्म पहननेसे क्या? अंतर तो तेरा रागादि मलोंसे परिपूर्ण है, बाहर तू क्या धोता है?

*

६. बाहुका, अधिकक्क, गया और सुंदरिकामें, सरस्वती और प्रयाग तथा बाहुमती नदीमें कलुषित कर्मोवाला मूढ चाहे नित्य ही नहावे, पर शुद्ध नहीं होगा। क्या करेगी सुंदरिका, क्या करेगा प्रयाग और क्या करेगी वह बहुलिका? ये सब तीर्थ उस कृतकिल्बिष (पापी) दुष्ट मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकते।

७. शुद्ध मनुष्यके लिए सदा ही फल्गु नदी है, सदा ही उपोसथ (व्रतका दिन) है। शुद्ध और शुचिकर्माके व्रत तो सदा ही पूरे होते रहते हैं।

८. तू तो समस्त प्राणियोंकी कल्याण-कामना कर, यही तेरा तीर्थ-स्थान है। यदि तू असत्य नहीं बोलता, यदि तू प्राणियोंकी हिंसा नहीं करता, यदि तू बिना दिया हुआ नहीं लेता, और यदि तू श्रद्धावान् तथा मत्सररहित है, तो फिर गया जाकर क्या करेगा? तेरे लिए तो यह क्षुद्र जलाशय ही गया है।

*

९. पानीसे शुद्धि नहीं होती। जो सत्यनिष्ठ और धर्मवान् हैं वही शुचि हैं, वही शुद्ध है।

*

१०. अंतःशुद्धि न दृष्टिसे, न श्रुतिसे और न ज्ञानसे ही प्राप्त होती है। शीलव्रत पुरुष भी आध्यात्मिक शुद्धि नहीं दिला सकता; पर इतनेसे यह न समझना कि ये निरर्थक हैं और इनका त्याग करनेसे शुद्धि प्राप्त

होती है। जबतक सम, विशेष और हीनका भाव बना रहेगा, तबतक शुद्धि दुर्लभ है।

*

११. जो तृष्णाके बंधनसे नहीं छूटा उस मनुष्यकी शुद्धि न नग्न रहनेसे, न जटा रखानेसे, न पंक लपेटनेसे, न भस्म रमानेसे और न विभिन्न आसनों के लगानेसे ही होती है।

*

१२. तू अपने किये पापोंसे अपनेको ही मलिन बना रहा है। पाप छोड़दे तो स्वयं ही शुद्ध हो जायगा। शुद्धि और अशुद्धि अपने ही हैं। अन्य मनुष्य अन्य मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

*

१३. जिन वस्तुओंकी उत्पत्ति हुई है वे सभी अनित्य हैं, जो इस बातको प्रज्ञाकी आँखोंसे देखता है, वह सभी दुःखोंसे उदासीन हो जाता है। चित्त-शुद्धिका यही सच्चा मार्ग है।

१४. जितनी भी संस्कृत या उत्पन्न वस्तुएँ हैं वे सभी दुःखदायी हैं। जो इस बातको जानता है और प्रज्ञाकी आँखोंसे देखता है, वह सभी दुःखोंसे विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धिका यही सच्चा मार्ग है।

१५. जितने भी धर्म या पदार्थ हैं वे सभी अनात्म हैं। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञाकी आँखोंसे देखता है, वह समस्त दुःखोंसे विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धिका यही सच्चा मार्ग है।

१-४. बु. च. (सुद्धरिक भारद्वाज सुत्त) ५. ध. प. (ब्राह्मण-वग्गो) ६-८. म. नि. (वत्थ सुत्तंत) ६. बु. च. (जटिल सुत्त) ११. ध. प. (दंड वग्गो) १२. ध. प. (अत्त वग्गो) १६-१५. ध. प. (मग्ग वग्गो)

: १५ :

चित्त

१. जिस समय मनुष्यका चित्त काम-विकारसे व्यग्र हो जाता है और कामविकारके उपशमनका रास्ता उसे दिखाई नहीं देता, उस समय उस कामाधको यह नहीं सूझता, कि क्या तो स्वार्थ है और क्या परार्थ ।

२. जिस समय मनुष्यका चित्त क्रोधाभिभूत अथवा आलस्यके कारण जड़वत्, भ्रांत अथवा संशयग्रस्त हो जाता है, उस समय वह यथार्थरीति से यह नही समझता कि अपना अथवा दूसरेका हित किसमे है ।

३. वर्तनके पानीमें काला रंग डाल देनेके बाद जैसे उसमे हमें अपना प्रतिविंव ठीक-ठीक नहीं दिखाई देता, उसी तरह जिसका चित्त कामविकारसे व्यग्र हो जाता है, उसे अपने हित-अहितका ज्ञान नहीं रहता ।

४. स्वच्छ पानीका वर्तन जब गरम हो जाता है, तब उस पानीसे भाप निकलने लगती है और वह खौलने लगता है। उस समय मनुष्य उस खौलते हुए पानीमे अपना प्रतिविंव नहीं देख सकता ।

इसी तरह मनुष्य जब क्रोधाभिभूत होता है, तब उसकी समझमे यह नहीं आता कि उसका आत्महित किसमें है ।

५. उस वर्तनके पानीमे अगर सिवार हो, तो मनुष्य उसमे अपना प्रतिविंव नहीं देख सकता ।

इसी प्रकार जिसका चित्त आलस्यसे पूर्ण होता है, वह अपना ही हित नहीं समझ सकता, दूसरोंका हित कैसे समझ सकेगा ।

६. उस वर्तनका पानी अगर हवासे हिलने-डुलने लगे, तो उसमें मनुष्य अपना प्रतिविंव कैसे देख सकता है ?

इसी प्रकार भ्रांतचित्त मनुष्य यह समझ ही नहीं सकता कि किसमें तो अपना हित है और किसमें पराया ।

७. वह पानी अगर हाथसे हिला दिया गया हो, तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिविंव ठीक-ठीक नहीं देख सकता ।

इसी तरह जिसका चित्र संशयग्रस्त हो गया है, वह अपना और

पराया हित-अहित समझ ही नहीं सकता।

८. वही पानी यदि निर्मल और शात हो, तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिबिंब स्पष्ट देख सकता है।

इसी प्रकार जिसका चित्त कामच्छंद, व्यापाद (क्रोध), आलस्य, भ्रातता और संशयग्रस्तता इन पाँच आवरणोंसे मुक्त हो गया है, वही अपना और पराया हित यथार्थरीतिसे समझ सकता है।

९. जिस प्रकार पानीसे निकलकर मछली थलमें आ पड़नेपर तड़फड़ाती है, उसी तरह यह चित्त राग, द्वेष और मोहके फंदेसे निकलनेके लिए काँपता है।

१०. कठिनाईसे वशमें आनेयोग्य चंचल और जहाँ-तहाँ दौड़नेवाले चित्तका दमन करना अच्छा है। दमन किया हुआ चित्त ही शातिदायक होता है।

११. कठिनाईसे समझमें आनेयोग्य, अत्यंत चालाक और जहाँ-तहाँ दौड़नेवाले चित्तकी बुद्धिमान् पुरुषको रक्षा करनी चाहिए; सुरक्षित चित्त से सदैव सुख मिलता है।

१२. दूर-दूरतक दौड़ लगानेवाले, एकाकी चलनेवाले शरीर-रहित और हृदयकी गुफामें छिपे हुए इस चित्तको जो संयममें रखता है, वही प्रबल-मारके (विषयो के) बंधनसे मुक्त हो सकता है।

१३. जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सच्चे धर्मको नहीं जानता और जिसके हृदयमें शाति नहीं, उसे पूर्ण ज्ञान कैसे हो सकता है?

१४. जिसका चित्त मल-रहित और अकंप्य है; जो सदा ही पाप और पुण्यसे विहीन है, उस सतत सजग रहनेवाले पुरुषके लिए कहीं भी भय नहीं।

१५. इस शरीरको घड़ेके समान टूट जानेवाला समझकर इस चित्त को गढ़के समान सुदृढ़ करके प्रज्ञाके अस्त्रसे विषयोंके साथ युद्धकरे और जब विषयोंको जीतले तो उनके ऊपर कड़ी-नजर रखे, असावधानी न करे।

१६. जितना हित माता, पिता या दूसरे भाई-बंधु कर सकते हैं,

उससे कहीं अधिक हित मनुष्यका संयत चित्त करता है ।

१७. अगर मकानका छप्पर खराब है, तो उसकी दीवारें इत्यादि अरक्षित ही समझनी चाहिए, धीरे-धीरे वह मकान भूमिसात् ही होनेको है।

इसी तरह जो अपने चित्तको नहीं सँभालता, उस मनुष्यके कर्म विकारग्रस्त हो जाते हैं, और इसका अत्यंत अनिष्ट परिणाम होता है। अपने चित्तको यदि वह सँभाल लेता है तो उसके सारे कर्म सुरक्षित रहते हैं, और वह शातिसे प्राण त्याग करता है।

१८. जिस समय चित्तमें जडता आ गई हो, उस समय प्रश्रब्धि (शाति), समाधि और उपेक्षा इन तीन वोध्यंगोंकी भावना करनी ठीक नहीं। किसी मनुष्य को आग सुलगानी हो, और वह चूल्हेमे गीली लकड़ियाँ और गीली घास-पात रखकर उसे फूँकने लगे तो क्या आग सुलग जायेगी?

इसी प्रकार जिसका चित्त जड हो गया है, वह यदि प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन तीन वोध्यंगोंकी भावना करेगा, तो उसके चित्तको उत्तेजना मिलने की नहीं।

१९. उस समय तो धर्म-प्रविचय (धर्मान्वेषण), वीर्य (उद्योग या मनोवल) और प्रीति (हर्ष) इन तीन वोध्यंगोंकी भावनाएँ अत्यंत उपयोगी हैं। सूखी लकडी और सूखा घास डालनेसे आग तुरंत सुलग जाती है।

इसी तरह चित्तकी जाड्यावस्थामे धर्म-प्रविचय, वीर्य और प्रीति इन तीन संवोध्यगोंकी भावना करनेसे चित्तकी जडता दूर हो जाती है और उसे अवश्य उत्तेजना मिलती है।

२०. पर, जिस समय चित्त भ्रात हो गया हो, उस समय धर्म-प्रविचय वीर्य और प्रीति इन तीन वोध्यगोंकी भावना करनी ठीक नहीं। इन वोध्यंगोंकी भावनासे चित्त-भ्रांतिका उपशमन नहीं होता, वल्कि वह और भी अधिक भ्रात हो जाता है।

२१. उस समय तो प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन तीन वोध्यंगों की भावना करनी चाहिए, क्योंकि इन वोध्यगोंसे भड़का हुआ चित्त ठिकाने पर आजाता है, इन्ही वोध्यगोंकी भावनासे भ्रातचित्तको शाति मिलती है।

२२. केवल यह चित्त ही मरणशील मनुष्यका साथी है।

२३. जिस प्रकार उस मकानमें वर्षाका पानी सहज ही पैठ जाता है, जो ठीक तरहसे छाया हुआ नहीं होता, उसी प्रकार अनभ्यस्त (अभावित) चित्तमें राग सहज ही प्रवेश कर जाता है।

२४. जैसे अच्छी तरह छाये हुए मकानमें वर्षाका पानी आसानीसे नहीं पहुँच सकता, वैसे ही अनभ्यस्त चित्तके अंदर रागका प्रवेश नहीं हो सकता।

२५. अरे! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जायगा।

---

१. ८—बु. ली. सा. सं. (भाग ३, पृष्ठ २७०) ६-१६. ध. प. (चित्तवग्गो) १७. अं. नि. (कूटसुत्त) १८-२१. बु. ली. सा. सं० (पृष्ठ २७१) २२. अं. नि. (दसक निपात) २३-२४. ध. प. (यमक वग्गो)

: १६ :

अनित्यता

१. यह क्षणभंगुर शरीर रोगोंका घर है। इस देहको सड़-सड़कर भग्न हो जाना है। आश्चर्य ही क्या, जीवन मरणांत जो ठहरा।

२. इस जराजीर्ण शरीरके साथ कौन मूर्ख प्रीति जोड़ेगा? इसकी हड्डियोंको तो ज़रा देखो—शरद्कालकी अपथ्य परित्यक्त लौकीकी भाँति या कबूतरोंकी सी सफेद यह हड्डियाँ!

३. यह शरीर क्या है, हाडोंका एक गढ़ है। यह गढ़ मास और रक्तसे लिपा हुआ है। इस गढ़के भीतर बुढ़पा, मृत्यु, अभिमान और डाहने अड्डा बना रखा है।

४. इस चौथेपनमें तू पीले पत्तेकी तरह जीर्ण हो गया है। देख, ये यमदूत तेरे सामने खड़े हैं। प्रयाणके लिए तो तू तैयार है, पर पाथेय (राह-खर्च) तेरे पास कुछ भी नहीं! अतः अब भी तू अपने लिए रक्षाका स्थान बना, उद्योग कर, पंडित बन, अपना यह मल धो डाल, दोषरहित हो जा। इस प्रकार तू आर्योंका दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

५. आयु तेरी अब समाप्त हो चली है। तेरा कोई निवासस्थान भी यहाँ नहीं, न पाथेय ही है। अतः तू अपने लिए रक्षाका स्थान बना, उद्योग कर, पंडित बन, और अपना यह मल पखारकर दोषरहित होजा। इस तरह तू अब भी आर्योंका दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

*

६. इस देह के भीतर कैसी-कैसी चीजें भरी हुई हैं—आँतें, यकृत्-पिंड, मूत्राशय, फेफड़े, तिल्ली, लार, थूक, पसीना, चरबी, रक्त, पीव, पित्त, विष्ठा और मूत्र!

७. इस नौ दरवाजेकी देहसे कैसी-कैसी चीजें निकला करती हैं—आँख, कान, नाक, मुँह ये सभी मलद्वार हैं। शरीरके एक-एक छेदसे पसीना निकलता है।

८. जब इस देहमेंसे प्राण निकल जाते हैं, तो यह फूल जाती है और नीली पड़ जाती है। मरघटमें इसे फेंक देते हैं और तब सगे संबंधी भी देहकी उपेक्षा करते हैं।

९. कुत्ते, सियार, भेड़िये और कीड़े वहाँ उस देह को खाते हैं और कौए और गीध भी महोत्सव मनाते हैं।

१०. ऐसी क्षणभंगुर और घृणित देहपर जो गर्व और दूसरोंकी अवहेलना करता है, उसका कारण सिवा उसकी मूढ़ताके और हो ही क्या सकता है?

*

११. जागो! बैठ जाओ! दृढ़ निश्चयके साथ शांतिका अभ्यास करो। तुम्हें गाफिल देखकर यह मृत्युराज मार कहीं अपने मोहपाशमें न फँसाले।

१२. शल्य तुम्हारे शरीरमें चुभा हुआ है, और तुम उससे पीड़ित हो रहे हो। आश्चर्य है कि इस दुःख-पीड़ामें भी तुम्हें नींद आ रही है!

१३. अप्रमाद और प्रज्ञाके द्वारा अपने शरीरमें चुभा हुआ यह तीक्ष्ण शल्य निकाल लो न।

१४. अरे, यह जीवन कितना अल्प है ! सौ वर्ष पूरे होनेसे पहले ही यह समाप्त हो जाता है । और जो इससे अधिक जीता है वह भी एक दिन जराजीर्ण होकर मर जाता है ।

१५. मनुष्य जिसे मानता है कि यह मेरा है उसे भी एक दिन मृत्यु द्वारा नष्ट होना ही है, यह समझकर बुद्धिमान् धर्मोपासक 'ममत्व' नहीं करता ।

१६. सपने में देखी हुई वस्तु को जागने के बाद जैसे मनुष्य देख नहीं सकता, वैसे ही वह अपने परलोकवासी प्रियजनों को नहीं देख सकता।

१७. जो प्राणी परलोकवासी हो जाता है उसका यहाँ केवल नाम ही शेष रह जाता है ।

१८. लोभी मनुष्य न तो शोकका त्याग कर सकते हैं, न दुःख और डाहका ही ।

*

१९ ओह ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनाशून्य हो सूखे ठूँठकी तरह पृथिवी पर गिर रहेगा ।

*

२० राग आदिके पुष्पों को चुननेवाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी तरह पकड़ ले जाती है, जिस तरह कि सोये हुए गाँवको बाढ़ बहा ले जाती है ।

*

२१. सोये हुए गाँवको जैसे भारी बाढ़ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्रकलत्रादिमें आसक्त पुरुषको धोखे-ही-धोखेमें मौत उठा ले जाती है ।

२२. न पुत्र रक्षा कर सकता है, न पिता और न बंधु-बाधव ही । जब मौत आकर धर दबाती है, तब न जातिवाले रक्षक हो सकते हैं, न परिवारवाले ।

*

२३. अनित्यता न तो नगर-धर्म है, और न वह कुल-धर्म ही ।

समस्त मनुष्यों और देवताओंका यही स्वभाव है कि एक-न-एक दिन उन्हें मरना ही होगा।

२४. मूर्ख सोचता है कि 'यह पुत्र मेरा है', 'यह धन मेरा है ?' अरे, जब यह शरीर ही अपना नहीं है, तब किसका पुत्र और किसका धन !

*

२५. जरा देखो तो इस विचित्र शरीरको। तमाम व्रण-ही-व्रण हैं। पीडित है, तो भी अनेक संकल्पोंसे युक्त है! अरे, इसकी स्थिति ही अनियत है। क्या ठिकाना, कब छूट जाय!

१—५. ध. प (जरा वग्गो). ६—१०. सु. नि. (विजयसुत्त) ११—१३. सु. नि. (उट्ठान सुत्त) १४—१८. सु. नि. (जरासुत्त) १९. ध. प. (चित्त वग्गो) २०. ध. प. (पुप्फ वग्गो) २१—२२. ध. प. (मग्ग वग्गो) २३. थेरी अपदान (तृतीय भाणवार) २४. ध. प. (बाल वग्गो) २५. ध. प. (जरा वग्गो)

: १७ :

शोक किसके लिए ?

१. ऐसा कोई उपाय नहीं कि जिससे मृत्यु न हो। जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्राणियोंका स्वभाव ही मृत्यु है।

२. पके हुए फलोंको जिस तरह डालसे नीचे गिर पडनेका भय है, उसी तरह जन्मे हुए प्राणियोंको मृत्युका भय लगा रहता है।

३. कुम्हारके गढ़े हुए मिट्टीके बर्तनका जिस प्रकार फूटनेपर पर्यवसान हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियोंके जीवनका मृत्युमें पर्यवसान होता है।

४. छोटा हो या बडा, मूर्ख हो या पण्डित, सभी मृत्युके अधीन हैं। ये सभी प्राणी मृत्युपरायण हैं।

५. मृत्यु और जरासे यह सारा संसार ग्रसित हो रहा है। यह तो लोकका स्वभाव ही है, ऐसा समझकर आत्मज्ञ पंडित शोक नहीं करते।

६. जिसके आने और जानेका मार्ग तुझे मालूम नहीं, और जिसके दोनो ही अंत तेरे देखनेमें नहीं आते, उसके लिए तू अकारथ ही शोक करता है।

७. कितना ही रोओ, कितना ही शोक करो, इससे चित्तको शांति तो मिलनेकी नहीं। उलटे, दुःख ही बढेगा और शरीरपर भी शोकका बुरा प्रभाव पडेगा।

८. आप ही अपनेको कष्ट देनेवाला मनुष्य क्षीणकाय और निस्तेज हो जाता है। शोकसे उन मृत प्राणियोंको कोई लाभ तो पहुँचता नहीं। अतएव यह शोक व्यर्थ है।

९. कोई सौ वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रहे, तो क्या—एक-न-एक दिन तो उन प्रियजनोंके बीचसे अलग होना ही है।

१०. अतः जो अपनेको सुखी रखना चाहता है, उसे अपने अंतःकरणसे इस शोकरूपी शल्यको खींचकर फेंक देना चाहिए।

*

११. यह चीज मेरी है या दूसरोंकी, ऐसा जिसे नहीं लगता और जिसे ममत्वकी वेदना नहीं होती, वह कभी यह कहकर शोक नहीं किया करता यि मेरी वह चीज नष्ट हो गई है।

१२. प्रिय वस्तुसे ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रियसे ही भय। प्रिय वस्तुओंके बंधनसे जो मुक्त है, उसे शोक नहीं; फिर भय कहाँसे हो?

१३. प्रेम या मोहासक्तिसे ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रेमसे ही भय; प्रेमसे जो मुक्त हो गया है उसे शोक कैसा—और फिर भय कहाँसे होगा?

१४. इसी प्रकार राग, काम और तृष्णासे शोक तथा भय उत्पन्न होता है। राग, काम और तृष्णासे जो विमुक्त है उसका शोकसे क्या संबंध—और फिर उसे भय कहाँसे होगा?

१५. मनुष्य तो है ही क्या, ब्रह्माके भी वशकी यह बात नहीं कि जो जराधर्मी है उसे जरा (बुढापा) न सताये, जो मर्त्य है उसकी मृत्यु न हो, जो क्षयवान् है उसका क्षय न हो और जो नाशवान् है उनका नाश न हो।

१६. किसी प्रियजनकी मृत्यु हो जानेके प्रसंगपर मूढ़ लोग यह विचार नहीं करते कि 'यह बात तो है नहीं कि मेरे ही प्रियजनको बुढ़ापा, व्याधि और मृत्युका शिकार होना पड़ा है, यह तो सारे संसारका धर्म है, प्राणि-मात्र जरा और मृत्युके पाशमें बँधे हुए हैं।'

१७. मूढलोग विवेकांध होकर शोक-समुद्रमें डूब जाते हैं, और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। न उन्हें अन्न रुचता है, न जल। उनके शरीरकी कांति क्षीण पड़ जाती है। काम-काज सब बंद हो जाता है। उनकी यह दशा देखकर उनके शत्रु आनंद मनाते हैं, कि चलो, अच्छा हुआ, इनका प्रियजन तो मरा ही, यह भी उसके वियोगमें मरनेवाले हैं।

१७. पर बुद्धिमान् और विवेकी मनुष्यकी बात इससे अलग है। वह जरा, व्याधि, मरण, क्षय और नाशका शिकार होनेपर यथार्थरीतिसे विचार करता है। यह देखकर, कि इस विकारसे तो जगत्में कोई भी अछूता नहीं बचा, वह शोक नहीं करता। वह अपने अंतःकरणसे शोकके उस विषाक्त बाणको खींचकर फेंक देता है, जिस बाणसे विद्ध मूर्ख मनुष्य अपनी ही हानि करते हैं।

१—१० सु. नि (सल्ल सुत्त) ११. सु. नि. (अत्तदंड सुत्त) १२-१४ ध प. (पिय वग्गो) १५–१८. अं. नि (कोसल सुत्त)

: १८ :

विषयोंका मीठा विष

१. नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा इन पाँच इंद्रियोंके रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्शसे मनुष्यको जो सुख प्राप्त होता है, उसीको मैं विषयोंकी जहरीली मिठाई कहता हूँ।

२. एक नौजवान आदमी व्यापार, खेती-पाती या नौकरी करके अपना निर्वाह करता है। अपने रोजगार-धंधेमें उसे भारी-से-भारी कष्ट झेलना पड़ता है, तो भी विषय-भोगकी वस्तु प्राप्त करनेके लिए वह दिन-रात

प्रयत्न किया करता है। इतना परिश्रम करनेपर भी, यदि उसकी मनचाही चीज उसे नहीं मिलती, तो वह शोकाकुल होकर विचार-विमूढ़ बन जाता है।

३. यदि उसे अपने उद्योगमें यश मिल गया और अपनी वाञ्छित वस्तु प्राप्त होगई, तो वह दिन-रात इसी चिंतामें पड़ा रहता है, कि दुष्ट राजा या चोर उसे लूट न ले जाये, आग या बाढ़से वह नष्ट न हो जाय और उससे दुश्मनी माननेवाले बंधु-बाधव कहीं उसे नुकसान न पहुँचा बैठें। इन विचारोंसे उसका मन सदा ही शंकित और त्रस्त रहता है। और अगर उसकी अशंका सत्य निकली, तो उस मनुष्यके दुःखका पार नहीं रहता।

४. इन विषयोंके लिए ही एक राजा दूसरे राजाके साथ, क्षत्रिय क्षत्रियके साथ, वैश्य वैश्यके साथ, माता पुत्रके साथ, पुत्र माताके साथ, बाप लड़केके साथ, बहिन भाईके साथ और मित्र मित्रके साथ लड़ता है। इन विषयोंके पीछे क्या-क्या कांड नहीं होते—गाली-गलौज होता है, हाथापाई होती है, हथियार चल जाते हैं और लोग मारे भी जाते हैं, और नहीं तो मरणातक दुःख तो भोगना ही पड़ता है।

५. इन विषयोंकी प्राप्तिके लिए ही लोग लडनेपर आमादा हो जाते हैं, और भीषण युद्धक्षेत्रमें उतर पड़ते हैं। खूब घमासान युद्ध होता है, और रणक्षेत्रमें कितने ही मनुष्य अस्त्र-शस्त्रोंसे मारे जाते हैं, कितने ही आहत होते हैं। विषयोंकी इस जहरीली मिठाईके पीछे उन्हें मरणांतक दुःख भोगना पड़ता है।

६. इस विषय-भोगके लिए कितने ही मनुष्य चोरी करते हैं, डाका डालते हैं, राहगीरोंपर टूट पड़ते हैं या दूसरोंकी स्त्रियोके साथ व्यभिचार करते हैं। विषय-भोगके शिकार उन चोरों, डाकुओं और व्यभिचारियोंको पकड़कर राजा अनेक प्रकारका दंड देता है। उनके हाथ-पैर तोड़ डालता है, उनके नाक-कान काट लेता है या उनका सिर ही उडा देता है।

७. इस विषाक्त विषय-भोगके लिए ही मनुष्य मन, वचन और

कायासे इस लोकमें घोर-से-घोर दुराचार करता है, और मृत्युके बाद दुर्गतिको प्राप्त होता है।

८. विषयोंकी आसक्ति छोड़ देनेसे ही मनुष्य विषय-विमुक्त हो सकता है।

९. जो ज्ञानवान् मनुष्य विषय-माधुर्य, विष-दोष और विषय-मुक्तिको यथार्थरीतिसे जानता है, वह स्वयं विषयोंका त्याग कर देता है, और दूसरोंको भी विषयोंके त्यागका उपदेश करता है।

१०. सौंदर्यकी मिठाई क्या है? किसी अत्यंत सुरूपवती तरुणीको देखकर मनमें जो मादक सुख उत्पन्न होता है वही सौंदर्यकी मिठाई है।

११. पर इस सौंदर्यकी मिठाईमें तो विकार है। वही सुन्दरी तरुणी जब वृद्धा हो जाती है, जब उसकी कमर झुक जाती है, बिना हाथमें लकड़ी लिये जब वह चल नहीं सकती, उसके सब अंग शिथिल पड जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, बाल सन-से सफेद हो जाते हैं, गर्दन हिलने लगती है, चेहरेपर झुर्रियाँ पड जाती हैं, तब उसका वह पहलेका सरस सौंदर्य और ललित लावण्य विनष्ट हो जाता है। यह है सौंदर्यका दोष।

१२. सौंदर्यके विषयमें आसक्ति न रखना ही सौंदर्य-जन्य भयसे मुक्त होनेका सच्चा मार्ग है। सौंदर्यकी मिठाई क्या है, उसमें दोष क्या है, और उस दोष से हम किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं, इस सबको जो बुद्धिमान् पुरुष यथार्थरीतिसे समझता है, वह स्वयं तो रूप-रसके विषयसे मुक्त हो ही जायगा, दूसरोंको भी सौंदर्य-मुक्तिके मार्गपर चलनेकी शिक्षा देगा।

१—१२ (महादुक्खक्खन्ध सुत्तंत)

: १६ :

वैराग्य

१. जैसे थोड़े पानीमें मछलियाँ तड़फड़ाया करती हैं, वैसे ही एक दूसरेके साथ अंदर-ही-अंदर विरोध करके दौड़धूप करतेहुए लोगोंको देखकर मेरे अंतःकरणमे भयका प्रवेश हुआ।

२. मुझे कुछ ऐसा लगने लगा कि यह जगत् असार है और समस्त दिशाएँ मानों काँप रही हैं। इस जगत्में मैंने अपने लिए आश्रय-स्थान खोजा, पर वह कहीं भी न मिला।

३. अरे, अंततक ये लोग लड़ते ही रहेंगे—यह देखकर मुझे दुनिया से अत्यंत अरुचि हो गई है। तब अपने ही हृदयमें चुभा हुआ दुर्दर्श शल्य मुझे दिखाई दिया।

४. यदि शल्यसे मनुष्य बिंधा हुआ है, तो वह भागदौड मचायगा ही, पर यदि वह अंतरमे बिंधा हुआ बाण खीचकर निकाल लिया जाये, तो अपनी सारी दौड़धूप बंद करके वह एक जगह स्थिर हो जायगा।

५. ओह! कैसी भयंकर आग लगी है! सब जल रहे हैं। नेत्रेंद्रिय जल रही है। रूप जल रहा है। नेत्रेंद्रिय और रूपसे उत्पन्न विज्ञान भी जल रहा है।

६. ये सब किस आगसे जल रहे हैं? रागकी आगसे, द्वेषकी आग से, और मोहकी आगसे ये सब जल रहे हैं। जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य आदि परिणामोंसे ये सब जल रहे हैं।

७. इसी प्रकार श्रोत्रेंद्रिय और उसका विषय शब्द, घ्राणेंद्रिय और उसका विषय गंध, जिह्वा और उसका विषय रस, त्वचा और उसका विषय स्पर्श, मन और उसका विषय धर्म—ये सभी जल रहे हैं। रागाग्नि, द्वेषाग्नि और मोहाग्नि इन्हें जला रही हैं।

८. जन्म, जरा, मृत्यु, शोक और दुःखको जानकर श्रुतवा न्आर्य-श्रावक (गृहस्थ) को चाहिए कि वह चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण

और गंध, जिह्वा और रस, त्वचा और स्पर्श तथा मन और धर्ममें आसक्त न हो, निर्वेदके द्वारा विराग-निधि प्राप्त करले।

९. विराग होनेपर ही मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न होता है, और तभी उसका जन्मक्षय होता है। ब्रह्मचर्यव्रत भी तभी समाप्त होता है। मनुष्य फिर यहाँ आकर जन्म नहीं लेता।

१०. मैं जराधर्मी हूँ, व्याधिधर्मी हूँ, मरणधर्मी हूँ, इन तमाम प्रिय वस्तुओं और प्रियजनोंसे निश्चय ही एक दिन वियोग होगा। मैं जो बुरा या अच्छा कर्म करूँगा, उसका मुझे ही भागीदार होना पड़ेगा। अतः कर्म ही मेरा धन है, और कर्म ही मेरा मित्र।

११. 'मैं जराधर्मी हूँ' ऐसा विचार करनेसे मनुष्यका यौवनमद नष्ट हो जाता है। इस तारुण्य-मदके कारण मनुष्य काया, वचन और मनसे पाप करता है, पर जो यह स्मरण रखताहै कि मैं खुद जराधर्मी हूँ उसका यह मद नष्ट हो जाता है—नष्ट नहीं, तो कुछ कम तो हो ही जाता है।

१२. 'मैं व्याधिधर्मी हूँ इस बातका चिंतन करनेसे यह लाभ होता' है कि जिस आरोग्य-मदके कारण मनुष्य त्रिविध पापोंका आचरण करता है वह नष्ट होजताहै—नष्ट नहीं, तो कुछ कम तो हो ही जाता है।

१३. 'मैं मरणधर्मी हूँ' इस बातका चिंतन करनेसे मनुष्यका जीवन-मद नष्ट हो जाता है। यही इस चिंतनका लाभ है।

१४. 'तमाम प्रिय वस्तुओं और प्रियजनोंसे एक दिन वियोग होने को है' इस बातका स्मरण रखनेसे मनुष्य प्रिय वस्तु अथवा प्रियजनके अर्थ पापाचरण करने में प्रवृत्त नहीं होता, और न उसे वियोग-दुःखका ही भाजन बनना पड़ता है।

१५. जिस वस्तुका जन्म हुआ है उसका नाश न हो, क्या यह शक्य है?

१-४ सु. नि. (अत्तदण्डसुत्त) ५-९. बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा) १०-१४. बु. ली. सं. (पृष्ठ २६३) १५. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

वाद-विवाद

१. निंदा और स्तुति दोनों ही विवादके विषफल हैं। ये क्षुद्र वस्तुएँ चित्तके उपशमन की कारणभूत नहीं बनतीं। अतः विवाद कल्याणप्रद नहीं, ऐसा जाननेवाला कभी विवादमें न पड़े।

२. प्र०—जिसे कुछ लोग परमधर्म मानते हैं उसे ही कुछ लोग हीनधर्म मानते हैं। ये सभी जब अपनेको कुशल समझते हैं, तो फिर उनमें कौन वाद सच्चा है ?

३. उ०—वे कहते हैं कि हमारा ही धर्म परिपूर्ण है, और दूसरोंका धर्म हीन है। इस प्रकार लडाई-झगड़ा खडा करके वे वाद-विवाद करते हैं, और कहते हैं कि हमारी ही दृष्टि सच्ची है।

४. दूसरोंकी की हुई निंदासे ही हीन ठहरने लगे, तो फिर कोई भी पंथ श्रेष्ठ नहीं ठहर सकता; सभी अपने-अपने पंथको दृढ़ (नित्य) और दूसरोंके पंथको हीन कहते हैं।

५. जिस तरह कि वे अपने पंथकी स्तुति करते हैं वैसे ही उनकी सद्धर्मकी पूजा है। ऐसा होनेपर तो सभी पंथ सच्चे हो सकते हैं, क्योंकि उनकी अपनी समझमें तो उनके यहाँ शुद्धि है ही।

६. ब्राह्मणको दूसरोंसे कुछ सीखना नहीं है। उसका यह आग्रह नहीं है। उसकी दृष्टि श्रेष्ठ है। वह तो वाद-विवादसे परे चला जाता है, क्योंकि वह यह नहीं मानता कि कोई दूसरा धर्मपंथ श्रेष्ठ है।

७. कुछ लोग यह समझते हैं कि जैसे हम जानते हैं, जैसे हम देखते हैं, केवल वही ठीक है और शुद्धि इसी दृष्टिसे होगी। पर बुद्ध शुद्धि दूसरे ही रास्तेसे बताते हैं।

८. देखनेवाला केवल नामरूप ही देखेगा, और उसे देखकर उतना ही उसे ज्ञान होगा। वह न्यून अथवा अधिक भले ही देखे, पर विज्ञजन इतनेसे ही शुद्धि नहीं मानते।

९. अपने कल्पित किये हुए मतको महत्त्व देनेवाले और हठपूर्वक वाद-विवाद करनेवाले मनुष्यको उपदेशसे समझाना या शात करना कठिन है। जिस मतका वह आश्रय लेता है उसीमें कल्याण है और उसीमें शुद्धि है ऐसा वह कहता है और ऐसा ही वह मानता है।

१०. किंतु ब्राह्मणकी बात तो निराली है, वह कभी विकल्पमें नहीं पड़ता। वह दृष्टिका आग्रह नहीं रखता। ज्ञानको भी वह महत्त्व नहीं देता। वह भिन्न-भिन्न मतोंको जानता है, और उन मतोंकी उपेक्षा करता है, जिन्हें दूसरे लोग सीखते हैं।

११. इस जगत्में ग्रंथिका त्याग करके विवादापन्न लोगोंके बीच मुनि पक्षपाती नहीं होता। वह इस अशात लोकमें शात और उपेक्षक बना रहता है। वह उन मतोंको नहीं सीखता, जिन्हें दूसरे लोग सीखते हैं।

१२. तृष्णा, काम, भय, दृष्टि और अविद्या इन पूर्वके आस्रवों (प्रवाहों) को तोडकर वह नये आस्रवोंका संचय नहीं करता। साप्रदायिक मत-मतातरोंसे वह मुक्त हो जाता है और इस जगत्-पाशमें बद्ध नहीं होता।

*

१३. जो सम, अधिक या न्यून समझता है, वही विवाद करता है। तीनों भेदोंमें जो अचल है, उसकी दृष्टिमें सम क्या, अधिक क्या और न्यून क्या? जिसमें सम-विषम नहीं है, वह विवाद करे तो क्या और किसके साथ?

*

१४ सभी लोग इस बातका प्रतिपादन करते हैं, कि पंथ तो हमारा ही शुद्ध है, दूसरोंके पंथोंमें शुद्धि कहाँ? जिस पंथका हमने आश्रय लिया है, उसी पंथमें श्रेय है, ऐसा कहनेवाले अपनेको भिन्न-भिन्न पंथोंमें बाँध लेते हैं।

१५. वे लोग वाद-विवाद करनेके इरादेसे सभामें जाकर एक दूसरेको मूर्ख ठहराते हैं। अपनेको शास्त्रार्थमें कुशल समझनेवाले ये लोग वाहवाही लूटनेकी इच्छासे ही वाद-विवाद करते हैं।

१६. सभामें जब वे शास्त्रार्थ करते हैं तब प्रशंसा लूटनेकी इच्छासे दूसरोंपर वाणीका प्रहार करने लगते हैं। यदि वादमें वे हार जाते हैं तो मारे शर्मके मुँह छिपा लेते हैं, और जब उनकी निंदा होती है तो क्रोधमें आकर दूसरोंके दोष ढूँढ़ने लगते हैं।

१७. वाद-विवादमें पड़कर मनुष्य या तो दूसरोंपर आघात कर बैठता है या खुद अपनेको ही चोट पहुँचाता है। विवादमें यह विष देखकर उससे निवृत्त हो जाना ही अच्छा है। कारण कि उसमें सिवा एक प्रशंसा-लोभके और कोई भी लाभ नहीं।

१८. सभामें कभी-कभी दूसरोंके वादको भंग करके वे प्रशंसा प्राप्त करते हैं और इससे उन्हें खूब हर्ष होता है! विजयके गर्वमें आसमानकी तरफ सिर उठाकर चलते हैं। सभामें विजय क्या होती है, मानो उनका जीवन कृतकृत्य हो जाता है।

१९. पर उनका यह विजय-गर्व ही अंतमें उनके अधःपातका कारण होता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको वाद-विवादमें पड़ना ही नहीं चाहिए। वाद-विवादसे कुछ अंतःशुद्धि तो होती नहीं, तब फिर अहंकार बढ़ानेसे लाभ?

२०. वाद-विवादके युद्धमें प्रवृत्त करनेवाला मेरा अहंकार पहले ही नष्ट हो चुका है। अब विवाद करूँ तो कैसे?

२१. जिन्होंने प्रतिपक्ष-बुद्धिको नष्ट कर दिया है, और जो अपने पंथकी खातिर दूसरे पंथोंके साथ विरोध-भाव नहीं रखते, जिनका यहाँ अपना कुछ नहीं है, उनके पास जाकर, अरे वादी, तुझे क्या मिलनेको है?

२२. मनुष्य अपने-अपने मतसे चिपटकर और दूसरोंके साथ वाद-विवाद करके अपनेको कुशल कहलाना चाहते हैं। कहते हैं कि वे ही धर्मके ज्ञाता हैं, और जो विरोधी हैं वे हीन हैं।

२३. इस प्रकार झगड़ा-टंटा खड़ा करके ये वाद-विवाद करते हैं। दूसरों को ये मूर्ख और अकुशल कहनेवाले हैं। इनमेंसे किसका वाद सच्चा है?

२४. दूसरोंके धर्मको न जाननेवाला मनुष्य यदि मूर्ख, पशु और हीनबुद्धि ठहराया जाय, तो फिर इन साम्प्रदायिक मतोंसे चिपटे रहनेवाले सभी मूर्ख और सभी हीनबुद्धि ठहरेंगे।

२५. ये जो एक दूसरेको मूर्ख कहते हैं यह ठीक नहीं। क्योंकि ये अपने-अपने मतको ही सत्य मानते हैं और एक दूसरेको मूर्ख ठहराते हैं।

२६. कुछ लोग जिसे युक्तियुक्त सत्य मानते हैं, उसे ही दूसरे तुच्छ और असत्य बताते हैं, और इस तरह व्यर्थका टंटा खड़ा करके वाद-विवाद करते हैं।

२७. हमारे ही मतमें अत्यंत सार है, इस प्रकारके विचारको आश्रय देकर ये वाद-विवादी लोग अपनेको कृतकृत्य मान रहे हैं। अहंकारमें मत्त हो ये पूर्ण अभिमानी बन बैठे हैं। अपने मानसे ही अपने को अभिषिक्त कर रहे हैं। यह सब साम्प्रदायिकता को गलेसे लगानेका परिणाम नहीं तो क्या है।

२८. 'शुद्धि तो इसी पंथमें हैं', ऐसा ये प्रतिपादन करते हैं, और कहते हैं कि दूसरे पंथोंमें शुद्धि नहीं। इस प्रकार अपने ही पंथको दृढ़ बतलानेवाले ये संप्रदाय-पंथी भिन्न-भिन्न पंथोंमें निविष्ट हो रहे हैं।

२९. जिस मनुष्यने तमाम रूढ़ मतोंको छोड़ दिया है, वह फिर किसीके साथ वाद-विवाद नहीं करता।

३०. अस्थिर मनुष्य ही वाद-विवादमें पड़ता है। निश्चल मनुष्य-को क्या पड़ा है कि वह किसीके साथ वाद-विवाद करे? जो न आत्मवाद में फँसा है, न उच्छेदवादमें, उसके पास साम्प्रदायिकताका काम ही क्या? उसने तो सारी साम्प्रदायिकता धो डाली है। फिर वह क्यों और किसके साथ वाद-विवाद करे?

१–१२. सु. नि. (महावियूह सुत्त) १२. बु. च. (मागंदिय-सुत्तंत) १४—२१. अट्ठक वग्ग (पसूर सुत्त) २२—२९. सु. नि. (चूल वियूह सुत्त) ३०. सु. नि. (दुट्ठट्ठक सुत्त)

: २१ :

गृहस्थके कर्त्तव्य

१. जिस आर्यश्रावक (गृहस्थ) को छह दिशाओंकी पूजा करनी हो वह चार कर्म-क्लेशोंसे मुक्त हो जाय। जिन चार कारणोंके वश होकर मूढ़ मनुष्य पापकर्म करनेमें प्रवृत्त होता है, उनमेंसे उसे किसी भी कारण के वश नहीं होना चाहिए। और संपत्ति-नाशके उसे छहों दरवाजे बंद कर देने चाहिए।

२. छह दिशाओंसे यहाँ क्या तात्पर्य है? माता-पिताको पूर्व दिशा, गुरुको दक्षिण दिशा, पत्नीको पश्चिम दिशा, बंधु-बाधवको उत्तर दिशा, दास और श्रमिकको नीचेकी दिशा तथा साधु-संतको ऊपर कीदिशा समझना चाहिए।

३. चार कर्म-क्लेश क्या हैं? हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण ये चार कर्म-क्लेश हैं। गृहस्थको इनसे हमेशा दूर रहना चाहिए।

४. किन चार कारणोंके वश होकर मूढ़जन पापकर्म करते हैं? स्वेच्छाचार, द्वेष, भय और मोहके कारण अज्ञजन पाप करते हैं। आर्यश्रावकको इनमेंसे किसी भी कारणके वश होकर पापकर्ममें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

५. संपत्ति-नाशके छह दरवाजे कौन-से हैं? मद्यपान, रातमें आवारा-गर्दी, नाच-तमाशेका व्यसन, जुआ, दुष्ट मनुष्योंकी संगति और आलस्य।

६. मद्यपानके व्यसनसे संपत्तिका नाश होता है, इसमें तो संदेह ही नहीं। फिर मद्यपानसे कलह बढ़ता है, और वह रोगोंका घर तो है ही। इससे अपकीर्ति भी पैदा होती है। यह व्यसन लज्जाको नष्ट और बुद्धिको क्षीण कर देता है। मद्यपानके ये छह दुष्परिणाम हैं।

७. जिसे रातमे इधर-उधर घूमने-फिरनेका चसका लग जाता है, उसका शरीर स्वयं अरक्षित रहता है। उसकी स्त्री और बाल-बच्चे भी सुरक्षित नहीं रह सकते। वह अपनी संपत्ति नहीं सँभाल सकता। उसे

हमेशा यह डर लगा रहता है कि कहीं कोई मुझे पहचान न ले। उसे झूठ बोलनेकी आदत पड़ जाती है। और वह अनेक कष्टोंमें फँस जाता है।

८. नाच-तमाशे देखनेमें भी कई दोष हैं। नाच-तमाशा देखनेवाला हमेशा इसी परेशानीमें पड़ा रहता है कि आज कहाँ नाच है, कहाँ तमाशा है, कहाँ गाना-बजाना है। अपने काम-धंधेका उसे स्मरणतक नहीं रहता।

९. जुआरी आदमी जुएमें अगर जीत गया, तो दूसरे जुआरी उससे ईर्ष्या करने लगते हैं; और अगर हार गया तो उसे भारी दुःख होता है। और उसके धनका नाश तो होता ही है, उसके मित्र और उसके सगे संबंधी भी उसकी बातपर विश्वास नहीं करते। उनकी ओरसे उसे बारबार अपमान सहन करना पड़ता है। उसके साथ कोई नया रिश्ता नहीं जोड़ना चाहता, क्योंकि लोगोंको यह लगता है कि यह जुआरी आदमी अपने कुटुंबका पालन-पोषण करने में असमर्थ है।

१०. अब दुष्टोंकी संगतिका दुष्परिणाम सुनो। धूर्त, दारुखोर, लुच्चे, चोर आदि सभी तरहके नीच मनुष्योंका साथ होनेसे दिन-प्रतिदिन उसकी स्थिति गिरती ही जाती है, और अंतमें वह हीन-से हीन दशाको पहुँच जाता है।

११. आलस्यके फल भी महान् भयंकर है। एक दिन आलसी आदमी इस कारण काम नहीं करता कि आज बड़ी कड़ाकेकी सरदी पड रही है; और दूसरे दिन बेहद गरमीके कारण वह कामसे जी चुराता है। किसी दिन कहता है कि, अब तो शाम हो गई है, कौन काम करने जाय; और किसी दिन वह कहता है कि, अभी तो बहुत सवेरा है, कामका वक्त अभी कहाँ हुआ? इस तरह आजका काम कलके ऊपर छोड़कर वह कोई नई संपत्ति तो उपार्जन कर नहीं सकता; और अपने पूर्वजोंका पूर्वार्जित धन नष्ट करता जाता है।

१२. उपर्युक्त चारों कर्म-क्लेशों, चारों पाप-कारणों और छहों

विपत्ति-द्वारोंका त्याग करनेके बाद गृहस्थको छह दिशाओंकी पूजा आरंभ करनी चाहिए।—उपर्युक्त प्रत्येक दिशाके पाँच-पाँच अंग हैं।

१३. माता-पितारूपी पूर्व दिशाकी पूजाके ये पाँच अंग हैं:—

(१) उनका काम करना;
(२) उनका भरण-पोषण करना;
(३) कुलमें चले आये हुए सत्कर्मोंको जारी रखना;
(४) माता-पिताकी सपत्तिका भागीदार बनना;
(५) दिवंगत माता-पिताके नामपर दान धर्म करना।

यदि इन पाँच अंगोंसे माता-पिताकी पूजा की जाय, तो वे अपने पुत्रपर पाँच प्रकारका अनुग्रह करते हैं:—

(१) पापसे उसका निवारण करते हैं;
(२) कल्याणकारक मार्गपर उसे ले जाते हैं;
(३) उसे कला-कौशल सिखाते है,
(४) योग्य स्त्रीके साथ उसका विवाह कर देते हैं;
(५) उपयुक्त समय आनेपर अपनी संपत्ति उसे सौंप देते हैं।

१४. गुरुरूपी दक्षिण दिशाकी पूजाके ये पाँच अंग हैं:—

(१) गुरुको देखते ही खड़ा हो जाना;
(२) गुरु बीमार पड़े तो उनकी सेवा करना
(३) गुरु जो सिखाये उसे श्रद्धापूर्वक समझ लेना;
(४) गुरुका कोई काम हो तो कर देना;
(५) वह जो विद्या दें उसे उत्तम रीतिसे ग्रहण करना।

शिष्य यदि इन पाँच अंगोंसे गुरुकी पूजा करता है, तो गुरु उस पर पाँच प्रकारका अनुग्रह करता है:—

(१) सदाचारकी शिक्षा देता है;
(२) उत्तम रीतिसे विद्या पढ़ाता है;
(३) जितनी भी विद्याएँ उसे आती हैं, उन सबका ज्ञान शिष्यको करा देता है;

(४) अपने संबंधियों और मित्रोंमें उसके गुणोंका बखान करता है;

(५) जब कहीं बाहर जाता है, तब ऐसी व्यवस्था कर देता है कि जिससे शिष्यको खाने-पीनेकी कोई अड़चन न पड़े।

१५. पत्नी-रूपी पश्चिम दिशाकी पूजाके ये पाँच अंग हैं:—

(१) उसे मान देना,

(२) उसका अपमान न होने देना;

(३) एक पत्नीव्रतका आचरण करना;

(४) घरका कारबार उसे सौंपना;

(५) उसे वस्त्र और आभूषणोंकी कमी न पड़ने देना।

पति यदि इन पाँच अंगोंसे पत्नी की पूजा करता है, तो वह अपने पतिपर पाँच प्रकारका अनुग्रह करती है:—

(१) घरमें सुन्दर व्यवस्था रखती है;

(२) नौकर-चाकरोंको प्रेमके साथ रखती है;

(३) पतिव्रता रहती है;

(४) पति उसे जो संपत्ति देता है उसकी रक्षा करती है, उसे उड़ाती नहीं।

(५) घरके सब काम-काजोंमें सदा तत्पर रहती है।

१६. बंधु-बाधवरूपी उत्तर दिशाकी पूजाके ये पाँच अंग हैं:—

(१) जो वस्तु उन्हें देनेयोग्य हो वह उन्हे देना;

(२) उनसे मधुर वचन बोलना;

(३) उनके उपयोगी बनना;

(४) उनके साथ निष्कपट व्यवहार रखना;

(५) समान भावसे बर्ताव करना।

जो आर्यश्रावक इन पाँच अंगोंसे अपने बंधु-बाधवोंकी पूजा करता है, उसपर वे पाँच प्रकारका अनुग्रह करते हैं:—

(१) उसपर यकायक संकट आ पड़नेपर वे उसकी रक्षा करते हैं;

(२) संकट-कालमें वे उसकी संपत्तिकी भी रक्षा करते हैं।
(३) विपत्तिमें उसे धीरज बँधाते हैं।
(४) विपत्तिकालमें उसका त्याग नहीं करते;
(५) उसके बाद उसकी संतानपर भी उपकार करते हैं।

१७. सेवकोंको सूचित करनेवाली जो नीचेकी दिशा, है उसकी पूजाके पाँच अंग ये हैं:—

(१) उनकी शक्ति देखकर उनसे काम करनेको कहना;
(२) उन्हें यथोचित वेतन देना;
(३) बीमार पड़ें तो उनकी सेवा-शुश्रूषा करना;
(४) यथावसर उन्हें उत्तम भोजन देना;
(५) समय-समयपर उनकी उत्तम सेवाके बदले उन्हें इनाम इत्यादि देना।

इन पाँच अंगोंसे मालिक अगर नौकरोंकी पूजा करता है, तो अपने मालिकपर वे पाँच प्रकारका अनुग्रह करते हैं:—

(१) मालिकके उठनेसे पहले वे उठते हैं;
(२) मालिकके सोनेके बाद वे सोते हैं;
(३) मालिकके माल-असबाबकी चोरी नहीं करते;
(४) उत्तम रीतिसे काम करते हैं;
(५) अपने मालिकका यश गाते हैं;

१८. साधु-संतोंकी जो ऊपरकी दिशा है, उसकी पूजाके ये पाँच अंग हैं:—

(१) शरीरसे आदर करना;
(२) वचनसे आदर करना;
(३) मनसे आदर करना;
(४) भिक्षाके लिए आवें तो उन्हें किसी प्रकारकी हानि न पहुँचाना;
(५) इन्हें उनके उपयोगकी वस्तु देना।

इन पाँच अंगोंसे जो आर्य श्रावक साधु-संतोंकी पूजा करता है, उस-पर वे साधु-संत छह प्रकारका अनुग्रह करते हैं:—

(१) पापसे उसका निवारण करते हैं;
(२) कल्याणकारक मार्गपर उसे ले जाते हैं;
(३) प्रेमपूर्वक उसपर दया करते हैं;
(४) उसे उत्तम धर्मकी शिक्षा देते हैं;
(५) शंका-निवारण करके उसके मनका समाधान करते हैं;
(६) उसे सुगतिका मार्ग दिखा देते हैं।

१६. दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या, और समानात्मकता अर्थात् दूसरोंको अपने समान समझना, ये लोक संग्रहके चार साधन हैं। बुद्धिमान् मनुष्य इन चारों साधनोंका उपयोग करके जगत्में उच्चपद प्राप्त करता है ।

१—१६ बु. च. (सिगालोवाद सुत्त)

: २२ :

चार संवास

१. संवास चार प्रकारका होता है:—

(१) शव, शवके साथ वास करताहै;
(२) शव देवीके साथ संवास करता है;
(३) देव शवके साथ संवास करता है,
(४) देव देवीके साथ संवास करता है।

२. जिस घरमें पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दुःशील, पापी, कृपण, और कटुभाषी होता है, और उसकी पत्नी भी वैसी ही दुष्टा होती है, वहाँ शव शवके साथ वास करता है।

३. जिस घरमें पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दुःशील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है; और उसकी पत्नी अहिंसक, अचौर,

सदाचारिणी, सच्ची, नशा न करनेवाली, सुशीला, पुण्यवती, उदार और मधुरभाषिणी होती है, वहां शव देवीके साथ संवास करता है।

४. जिस घरमें पति अहिंसक, अचौर, सदाचारी, सच्चा, मद्य-विरत सुशील, पुण्यात्मा, उदार और मधुरभाषी होता है; और उसकी पत्नी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठी, नशा करनेवाली, दुःशीला, पापिनी, कंजूस और कटुभाषिणी होती है, वहाँ देव शवके साथ संवास करता है।

५. जिस घरमें पति और उसकी पत्नी दोनों ही अहिंसक, अचौर, सदाचार-रत, नशा-विरत, सुशील, पुण्यवंत, उदार और मधुरभाषी होते हैं, वहाँ देव देवीके साथ संवास करता है।

१—५. अं. नि. (४: २. १: ३)

: २३ :

मित्र और अमित्र

१. जो मद्यपानादिके समय या आँखोंके सामने प्रिय बन जाता है, वह सच्चा मित्र नहीं। जो काम निकल जानेके बाद भी मित्र बना रहता है, वही मित्र है।

२. इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र समझना चाहिए:—

(१) दूसरोंका धन हरण करनेवाला;
(२) कोरी बातें बनानेवाला;
(३) सदा मीठी-मीठी चाटुकारी करनेवाला;
(४) हानिकारक कामोंमें सहायता देनेवाला।

३. जो बुरे काममें अनुमति देता है, सामने प्रशंसा करता है, पीठ-पीछे निंदा करता है, वह मित्र नहीं, अमित्र है।

४. जो मद्यपान-जैसे प्रमादके कामोंमें साथ और आवारागर्दीमें प्रोत्साहन देता है और कुमार्गपर ले जाता है वह मित्र नहीं, अमित्र है। ऐसे शत्रुरूपी मित्रको खतरनाक रास्तेकी भाँति छोड़ देना चाहिए।

५. वास्तविक सुहृद इन चार प्रकारके मित्रोंको समझना चाहिए:—

(१) सच्चा उपकारी;

(२) सुख-दुःखमें समान साथ देनेवाला;

(३) अर्थप्राप्तिका उपाय बतलानेवाला;

(४) सदा अनुकंपा करनेवाला।

६. जो प्रमत्त, अर्थात् भूल करनेवालेकी और उसकी संपत्तिकी रक्षा करता है, भयभीतको शरण देता है, और सदा अपने मित्रका लाभ दृष्टिमें रखता है, उसे उपकारी सुहृद समझना चाहिए।

७. जो अपना गुप्त भेद मित्र को बतला देता है, मित्रकी गुप्त बातको गुप्त रखता है, विपत्तिमें मित्रका साथ देता है, और उसके लिए अपने प्राण भी होम देनेको तैयार रहता है, उसे ही सच्चा सुहृद समझना चाहिए।

८. जो पापका निवारण करता है, पुण्यका प्रवेश करता है, और सुगतिका मार्ग बतलाता है वही 'अर्थ-आख्यायी', अर्थात् अर्थ-प्राप्तिका उपाय बतलानेवाला सच्चा सुहृद है।

९. जो मित्रकी बढ़ती देखकर प्रसन्न होता है, मित्रकी निंदा करनेवालेको रोकता है, और प्रशंसा करनेपर प्रशंसा करता है, वही सच्चा अनुकंपक मित्र है।

ऐसे मित्रोंकी सत्कारपूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भाँति सेवा करनी चाहिए।

*

१०. जगत्में विचरण करते-करते अपने अनुरूप यदि कोई सत्पुरुष न मिले तो दृढ़ताके साथ अकेला ही विचरे; मूढ़के साथ मित्रता नहीं निभ सकती।

*

११. जो छिद्रान्वेषण किया करता है, और मित्रता टूट जानेके भयसे सावधानीके साथ बर्तता है, वह मित्र नहीं है।

पिताके कंधेपर बैठकर जिस प्रकार पुत्र विश्वस्त रीतिसे सोता है उसी प्रकार जिसके साथ विश्वासपूर्वक वर्ताव किया जा सके, और दूसरे जिसे फोड न सकें, वही सच्चा मित्र है।

*

१२. अकेला विचरना अच्छा है, किंतु मूर्ख मित्रका सहवास अच्छा नहीं।

*

१६. यदि कोई होशियार, सुमार्गपर चलनेवाला और धैर्यवान साथी मिल जाय, तो तमाम विघ्न-बाधाओंको झेलते हुए भी उसके साथ रहना चाहिए।

१—६. दी. नि. (सिगालोवाद सुत्त) १०. ध. प. (बाल वग्गो) ११. सु. नि. (हिरि सुत्त) १२. बु. च. (पारिलेयक सुत्त) १३. सु. नि. (खग्गविसाण सुत्त)

: २४ :

जाति नैसर्गिक कैसी ?

१. जाति मत पूछ, तू तो बस एक आचरण पूछ। देख, आग चाहे जैसे काष्ठसे पैदा होती है। इसी प्रकार 'नीच कुल' का मनुष्य भी धृतिमान्, सुविज्ञ और निष्पाप मुनि होता है।

२. तो क्या तुम ऐसा मानते हो कि यहाँ मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा विविध जातियोंके सौ मनुष्योंको एकत्रित करे और उनसे कहे कि "आप सब, जो क्षत्रिय-कुलसे, ब्राह्मण-कुलसे और राजन्य-कुलसे उत्पन्न हैं, यहाँ आवे—और साखूकी या शाल वृक्षकी अथवा चंदनकी या पद्म-काष्ठकी अरणी लेकर आग बनावे, तेज पैदा करे।—

और, आप लोग भी आवें, जो चाडाल-कुलसे, निषाद-कुलसे, बसोर-कुलसे; रथकार-कुलसे और पुक्कस-कुलसे उत्पन्न हुए हैं, और कुत्ते

के पीनेकी, सूअरके पीनेकी कठौती (कठरी), धोबीकी कठौतीकी या रेंड की लकडीकी अरणी लेकर आग बनावें, तेज पैदा करें—

तो क्या तुम मानते हो कि क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र-कुलोंसे उत्पन्न पुरुषों द्वारा साखू-शाल-चंदन-पद्मकी अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गयाहै, वही अर्चिमान् (लौवाली), वर्णमान् और प्रभास्वर अग्नि होगी ?

और, चाडाल-निपाद-वसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्न पुरुषों द्वारा श्वपान कठरीकी, शूकर-पान कठरीकी तथा रेंड-काष्ठकी अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वह अर्चिमान्, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि न होगी ? क्या इस आगसे अग्निका काम नहीं लिया जा सकेगा ?

३. यह तो तुम जानते ही हो कि जीव-जंतुओंमें एक दूसरेसे बहुत-सी विभिन्नताएँ और विचित्रताएँ पाई जाती हैं, और उनमे श्रेणियाँ भी अनेक हैं।

इसी प्रकार वृक्षों और फलोंमें भी विविध प्रकारके भेद-प्रभेद देखने में आते हैं, उनकी जातियाँ भी कई प्रकारकी हैं।

देखो न, साँप कितनी जातियोंके हैं ! जलचरों और नभचरोंके भी असंख्य स्थिर भेद हैं, जिनसे उनकी जातियाँ लोकमें भिन्न-भिन्न मानी जाती हैं।

४. परतु मनुष्योंमें ? मनुष्योंके शरीरमें तो ऐसा कोई भी पृथक् चिह्न-(लिंग), भेदक चिह्न कहीं देखनेमें नहीं आता ! उनके केश, सिर, कान, आँख, मुख, नाक, गर्दन, कंधा, पेट, पीठ, हथेली, पैर, नाखून आदि अंगोंमें कहाँ हैं वैसी विभिन्नताएँ ?

५. जो मनुष्य गाय चराता है उसे हम चरवाहा कहेंगे, ब्राह्मण नहीं।

६. जो व्यापार करता है वह व्यापारी ही कहलायगा; और शिल्प करनेवालेको हम शिल्पी ही कहेंगे, ब्राह्मण नहीं।

७. दूसरोंकी परिचर्या करके जो अपनी जीविका चलाता है, वह परिचर ही कहा जायगा, ब्राह्मण नहीं।

८. अस्त्र-शस्त्रोंसे अपना निर्वाह करनेवाला मनुष्य सैनिक ही कहा जायगा, ब्राह्मण नहीं।

९. अपने कर्मसे कोई किसान है तो कोई शिल्पकार। कोई व्यापारी है तो कोई अनुचर। कर्मपर ही यह जगत् स्थित है। अपने कर्मसे ही एक मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है और दूसरा अब्राह्मण।

१०. प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, और झूठी धारणावाला चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय अथवा वैश्य हो या शूद्र, मरनेके बाद वह दुर्गतिको प्राप्त होगा, नरकगामी होगा।

*

११. क्या केवल ब्राह्मण ही प्राणि-हिंसा, चोरी, दुराचार, झूठ, चुगलखोरी, कटुवचन, बकवाद, लोभ, और द्वेषसे विरत होकर सुगतिको प्राप्त हो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं?

१२. क्या केवल ब्राह्मण ही वैर-रहित और द्वेष-रहित होकर मैत्री की भावना कर सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं? ऐसी भावना ब्राह्मण भी कर सकता है, क्षत्रिय भी कर सकता है, वैश्य भी कर सकता है और शूद्र भी कर सकता है।

१३. क्या ब्राह्मण ही मांगलिक स्नानचूर्ण लेकर नदीमें मैल धो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं?

१४. दो जुड़वाँ भाई हैं। एक तो अध्ययनशील और उपनीत, किन्तु दुराचारी और पापी है; दूसरा अन्-अध्ययनशील, अन्-उपनीत, किंतु शीलवान् और धर्मात्मा है। इनमेंसे यज्ञ अथवा आतिथ्यमें प्रथम भोजन आप किसे करायेंगे? उसीको न, जो अन्-अध्ययनशील और अन्-उपनीत होते हुए भी शीलवान् और धर्मात्मा है?

१५. माता-पिताके रज-वीर्य से जन्म लेनेवाला जीव न क्षत्रिय होता है, न ब्राह्मण—न वैश्य होता है, न शूद्र।

१६. उच्चकुलवाला भी प्राणि-हिंसक, चोर, मिथ्याचारी, झूठा, चुग-

घूसखोर, कटुभाषी, बकवासी, लोभी और द्वेषी होता है। इसलिए मैं उच्च-कुलीनताको श्रेय नहीं देता। साथ ही, उच्चकुलीनताको 'पापीय' भी नहीं कहता, क्योंकि उच्चकुलवाला मनुष्य भी अहिंसक, अचौर, मिथ्याचार-विरत, अद्वेषी आदि होता है।

१७. नीचकुलोत्पन्न भी, इसी तरह हिंसक होता है और अहिंसक भी, सच्चा होता है और झूठा भी; लोभी होता है और लोभ-विरत भी; द्वेषी होता है और अद्वेषी भी।

*

१८. जिस आश्रयको लेकर आग जलती है, वही उसकी संज्ञा होती है। काष्ठसे जलनेवाली आगकी संज्ञा काष्ठ-अग्नि, और गोमय (उपले) के आश्रयसे जलनेवाली आगकी संज्ञा गोमय-अग्नि होती है। किंतु आग का काम इन सभी अग्नियोंसे लिया जा सकता है।

*

१९. यवन और कंबोज तथा दूसरे भी सीमात प्रदेशोंमें दो ही वर्ण होते हैं —आर्य और दास। मनुष्य वहाँ भी आर्यसे दास हो सकता है, और दाससे आर्य। फिर इसका कोई अर्थ नहीं, कि अमुक वर्ण ही जन्मना श्रेष्ठ है।

*

२०. जो मनुष्य जातिवाद और गोत्रवादके बंधनमें बँधे हुए हैं, वे अनुपम विद्याचरण-संपदासे दूर ही हैं।

*

---

१. बु. च.(अत्तदीप सुत्त) २. म. नि. (अस्सलायण सुत्तंत)३-१० म. नि. (वासेट्ठ सुत्तंत)११.-१५. म. नि. (अस्सलायण सुत्तंत) १६-१८. म. नि. (एसुकारि सुत्तंत) १९. म. नि. (अस्सलायण सुत्तंत) २०. बु. च. (अंबट्ठ सुत्त)

: २५ :

ब्राह्मण किसे कहें ?

१. ब्राह्मण मैं उसे कहता हूँ जो अपरिग्रही है; जिसने समस्त बंधन काटकर फेंक दिये हैं; जो भय-विमुक्त हो गया है और जो संग एवं आसक्तिसे विरत है, मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

२. जो बिना चित्त बिगाड़े गाली, हनन और बंधनको सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसका सेनानी है, मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूं।

३. जो अक्रोधी है, व्रती है, शीलवान् है, बहुश्रुत है, संयमी है और अतिम शरीरवाला है; उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४. कमलके पत्तेपर जलकी भाँति, और आरेकी नोकपर सरसोंकी तरह जो विषय-भोगों में लिप्त नहीं होता, मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ।

५. चर-अचर सभी प्राणियोंमें प्रहार-विरत हो जो न मारता है और न मारनेकी प्रेरणा ही करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

६. जो इस प्रकारकी अकर्कश, आदरयुक्त और सत्यवाणी बोलता है कि जिससे ज़रा भी पीड़ा नहीं पहुँचती, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

७. बड़ी हो चाहे छोटी, मोटी हो या पतली, शुभ हो या अशुभ जो संसारमें किसी भी बिना दी हुई चीज़को नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ

८. जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनोंकी दी आसक्ति छोड़ दी है, और जो शोकरहित, निर्मल और परिशुद्ध है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ

९. मानुष भोगोंका लाभ छोड़ दिव्य भोगोंके लाभको भी जिसने लात मार दी है; किसी भी लाभ-लोभमें जो आसक्त नहीं उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१०. राग और घृणाका जिसने त्याग कर दिया है, जिसका स्वभाव शीतल है और जो क्लेशरहित है, ऐसे सर्वलोक-विजयी वीर पुरुषको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

११. जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्यमें कुछ नहीं है, और जो पूर्णतया परिग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१२. जो ध्यानी, निर्मल, स्थिर, कृतकृत्य और आश्रव-(चित्तमल) रहित है, जिसने सत्यको पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१३. जो न मनसे पाप करता है, न वचनसे और न कायासे; मन, वचन और काया पर जिसका संयम है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१४. न जटा रखानेसे कोई ब्राह्मण होता है, न अमुक गोत्रसे, और न जन्मसे ही। जिसने सत्य और धर्मका साक्षात्कार कर लिया, वही पवित्र है, वही ब्राह्मण है।

१५. जो गंभीर प्रज्ञावाला है, मेधावी है, मार्ग और अमार्गका ज्ञाता है और जिसने सत्य पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१६. जिसने तृष्णाका क्षय कर दिया है, जो भली भाँति जानकर अकथ पदका कहनेवाला है और जिसने अगाध अमृत प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१७. जो पूर्व जन्मको जानता है, सुगति और अगतिको जो देखता है और जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है, तथा जो अभिज्ञान-(दिव्यज्ञान) परायण है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१८. मूर्खोंकी धारणामें यह चिरकालसे घुसा हुआ है कि "ब्राह्मण जन्मसे होता है"; ज्ञानी पुरुष यह कदापि नहीं कहेंगे कि ब्राह्मण जन्म से होता है।

१९. अमुक माताकी योनिसे उत्पन्न होनेके कारण मैं किसी मनुष्य-को ब्राह्मण नहीं कहता।

२०. जो पुरोहिताई करके अपनी जीविका चलाता है वह ब्राह्मण नहीं, याचक है।

२१. ब्राह्मणपर प्रहार नहीं करना चाहिए, और ब्राह्मणको भी उस प्रहारकपर कोप नहीं करना चाहिए। ब्राह्मणपर जो प्रहार करता है उसके लिए धिक्कार है। और उसे भी धिक्कार है, जो उसके लिए कोप करता है।

*

२२. प्राचीन ब्राह्मणोंके पास न पशु थे, न सुवर्ण; न धान्य। उनके पास तो एक स्वाध्याय का ही धन-धान्य था। वे तो ब्रह्मनिधिके धनी थे।

२३. वे संयतात्मा और तपस्वी थे। विषय-भोगोंको छोडकर वे सदा ज्ञान और ध्यानमें ही निरत रहते थे।

२४. विविध वर्णके वस्त्रों, सेजो, और अतिथिशालाओंसे समृद्ध राष्ट्र उन ब्राह्मणोंको अभिवंदन करते थे।

२५. ब्राह्मण अवध्य थे, अजेय थे और धर्मसे अभिरक्षित थे।

२६. प्राचीन कालके वे ब्राह्मण अडतालीस वर्षतक अखंड कौमार ब्रह्मचर्य पालन करते थे।

२७. उस युगके ब्राह्मण विद्या और आचरणकी खोजमें रहते थे।

२८. वे लोग ब्रह्मचर्य, शील, अकुटिलता, मृदुता, तपस्या, सुप्रीति, अहिंसा और क्षमाके प्रशंसक थे।

*

२९. ब्राह्मण कौन? जो निष्पाप है, निर्मल है, निरभिमान है, संयत है, वेदात-पारंगत है, ब्रह्मचारी है, ब्रह्मवादी (निर्वाणवादी) और धर्मप्राण है, वही ब्राह्मण है।

*

३०. जिसने सारे पाप अपने अंतःकरणसे दूर कर दिये, अहंकारकी मलिनता जिसकी अंतरात्माका स्पर्श भी नहीं कर सकती, जिसका ब्रह्मचर्य परिपूर्ण है, जिसे इस लोकके किसी भी विषयकी तृष्णा नहीं है, जिसने अपनी अंतर्दृष्टिसे ज्ञानका अंत देख लिया, वही अपनेको यथार्थ रीतिसे ब्राह्मण कह सकता है।

---

११. म. नि. (वासेट्ठ सुत्तंत) १२—१७ ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) १८—२० म. नि. (वासेट्ठ सुत्तंत) २१. ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) २२–२८ बु. च. (ब्राह्मण धम्मिय सुत्त) २९. वि. पि. (महावग्ग) ३०. वि. पि (महावग्ग)

: २६ :

चांडाल कौन ?

१. क्रोधी, वैर माननेवाला, पापी, गुणीजनोंको दोष देनेवाला, मिथ्या दृष्टि रखनेवाला और मायावी मनुष्य ही वृषल अर्थात् चांडाल है।

२. जो प्राणियोंका वध करता है, प्राणियोंके ऊपर जो दयाभाव नहीं रखता, उसे चांडाल समझना चाहिए।

३. जो गाँवों और नगरोंको लूटता और वीरान करदेता है, दुनिया-में जो लुटेरेके नामसे पहचाना जाता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

४. जो मनुष्य कर्ज तो लेता है, पर जब लेनदार माँगने आता है तो साफ नट जाता है और कहता है कि मुझे तो तेरा कुछ देना ही नहीं; उसे चांडाल समझना चाहिए।

५. जो अपने लिए, दूसरोंके लिए अथवा पैसेके लिए झूठ बोलता है उसे चांडाल समझना चाहिए।

६. जो बलात्कारसे अथवा प्रेमसे अपने इष्टमित्रोंकी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

७. जो समर्थ होते हुए भी अपने वृद्ध माता-पिताका पालन-पोषण नहीं करता, उसे चांडाल समझना चाहिए।

८. लाभका हितकर उपाय पूछनेपर जो हानिकारक उपाय सुझाता है, अथवा संदिग्ध वचन बोलता है उसे चांडाल समझना चाहिए।

९. जो दूसरोंके घर जाकर उसका आतिथ्य स्वीकार करता है, पर यदि वे लोग कभी उसके घर आ जायें, तो वह उनका आदर-सत्कार नहीं करता, ऐसा मनुष्य चांडाल नहीं तो क्या है ?

१०. जो अंहभावके कारण आत्मस्तुति और परनिंदा करता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

११. जो मनुष्य क्रोधी, कृपण, मत्सरयुक्त, शठ और निर्लज्ज होता है

और जिसे लोकनिंदाके भयकी तनिक भी परवाह नहीं, उसे चांडाल समझना चाहिए।

१२. जो अनर्ह (अयोग्य) होकर भी अपनेको योग्य समझता है, वह ब्रह्मलोकमें चोर है और ऐसे पुरुषको वृषलाधम (नीचातिनीच चांडाल) कहते हैं।

१३. केवल जन्मसे कोई वृषल या चांडाल नहीं होता, और न जन्मसे कोई ब्राह्मण होता है। कर्मसे ही मनुष्य चाडाल होता है, और कर्मसे ही ब्राह्मण।

१—१३ सु. नि. (वसलसुत्त)

: २७ :

भिक्षु

१. जिस भिक्षुने शंकाओंका प्रवाह पार कर लिया है, जिसने तृष्णा-का शल्य निकालकर फेंक दिया है, निर्वाणमें जिसकी लौ लगी हुई है, जो निर्लोभी है और सदेवक जगत्का नेता है उसे **मार्गजिन** भिक्षु कहते हैं।

२. निर्वाण-पदको जानकर जो धर्मोपदेश तथा धर्मका विवेचन करता है, उस शंका-निवारक भिक्षुको **मार्गदेशक** भिक्षु कहते हैं।

३. उत्तम रीतिसे उपदिष्ट धर्ममार्गमें जो संयमी है, स्मृतिवान् है और निर्दोष पदार्थोंका सेवन करता है, उसे **मार्गजीवी** भिक्षु कहते हैं।

४. साधुओंका वेश धारण करके संघमें जबर्दस्ती घुस आनेवाले जो धृष्ट भिक्षु गृहस्थोंकी अपकीर्ति फैलाता है और जो मायावी, असंयमी तथा ढोंगी होते हुए भी साधुके रूपमें दुनियाको ठगता फिरता है, उसे **मार्गदूषक** भिक्षु कहते हैं।

५. संघमें यदि कोई गृहासक्त, पापेच्छु, पाप-संकल्पी, और पापाचारी भिक्षु देखनेमें आये, तो तुम सब मिलकर उसका बहिष्कार करदो; उस कचरेको फेंकदो, संघके उस सड़े हुए हिस्सेको छील डालो

६. काया और वचनसे जो शात है, भलीभाँति जो समाहित अर्थात् समाधियुक्त है, जिसने जगत् के तमाम लोभोंको अस्वीकार कर दिया है उसे उपशांत भिक्षु कहते हैं।

*

७. जो भिक्षु अपनी तरुणाईमें बुद्ध के शासन (बुद्ध-धर्म) में योग देता है, वह इस लोकको इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे मेघोंसे मुक्त चंद्रमा।

*

८. अतिशय प्रमोदयुक्त और बुद्ध-शासनमें प्रसन्नचित्त भिक्षु उस सुखमय प्रशात पदको प्राप्त कर लेता है, जिसमें मनुष्यकी समस्त वासनाएँ शात हो जाती हैं।

*

९. जो धर्ममें रमण करता है, धर्ममें रत रहता है और धर्मका चिंतन और धर्मका अनुसरण करता है, वह भिक्षु सद्धर्मसे पतित नहीं होता।

*

१०. जो भिक्षु मैत्री भावनासे विहार करता है, और बुद्धके शासन (धर्म) में श्रद्धावान् रहता है, वह सुखमय शात पदको प्राप्त कर लेता है, उसकी समस्त वासनाएँ शात हो जाती हैं।

*

११. भिक्षुको अपनी निंदा सुनकर अस्वस्थ और स्तुति सुनकर गर्वोन्मत्त नहीं होना चाहिए। लोभ, मात्सर्य, क्रोध और निंदाका उसे सदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए।

१.—४. सु. नि. (चुन्द सुत्त) ५. सु. नि. (धम्मचरिय सुत्त) ६–१०. ध. प. (भिक्खुवग्गो) ११. सु. नि. (तुवट्टक सुत्त)

: २८ :

सम्यक् परिव्राजक

१. जो लौकिक एवं दिव्य कामसुखमे आसक्त नहीं, वही धर्मज्ञ भिक्षु संसारका अतिक्रमण करके सम्यक् परिव्राजक हो सकता है।

२. जो भिक्षु निंदा, क्रोध और कृपणताका त्याग कर देता है, वह अनुरोध-विरोधसे मुक्त होकर इस जगत्में सम्यक् परिव्राजक कहा जाता है।

३. प्रिय और अप्रियका त्याग करके जो अनासक्त, अनाश्रित तथा संयोजनोंसे विमुक्त है, वही इस जगत्में सम्यक् परिव्राजक है।

४. उपाधि को जो निस्सार समझता है और ग्रहण करनेमें जो लोभ (छंदराग) का निरसन करता है, इस जगत्में वही सम्यक् परिव्राजक है।

५. भलीभाँति धर्मका तत्त्व समझकर जो मन, वचन और कर्मसे दूसरोंके साथ अविरोध रीतिसे बर्ताव करता है, जो निर्वाण-पदकी इच्छा रखता है, उसीको मैं इस जगत्मे सम्यक् परिव्राजक कहूँगा।

६. लोभ और आसक्तिको छोड़कर जो छेदन-बंधन से विरत हो गया है, शंकाओंको पार कर गया है, और जिसके हृदयसे तृष्णाका शल्य निकल गया है, वही भिक्षु इस जगत्मे सम्यक् परिव्राजक है।

७. अपना कर्तव्य धर्म समझकर जो भिक्षु किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करता, वही इस जगत्में सम्यक् परिव्राजक है।

८. जिसके आस्रव (दोष) क्षीण तथा अहंकार नष्ट हो चुका है, जिसने कामसुखोंको लात मारकर संसार समुद्रको पार कर लिया है और दात, शात और स्थिरात्मा है, वही इस जगत्में सम्यक् परिव्राजक है।

९. जो अतीत और अनागत संस्कारोंकी कल्पनाको पार कर गया है, जिसकी प्रज्ञा अत्यंत विशुद्ध है और जो समस्त आयतनोंसे मुक्त हो गया है, वही इस जगत्में सम्यक् परिव्राजक है।

*

१०. 'आर्यसत्यों' को जानकर और धर्मको समझकर तथा आस्रवों

का विनाश स्पष्टतापूर्वक देखकर जो समस्त उपाधियोंका क्षय कर देता है, वही इस जगत्‌में सम्यक् परिव्राजक है ।

१—१०. सु. नि. (सम्मा परिब्बाजनिय सुत्त)

: २६ :

प्रश्नोत्तरी

१. प्रश्न—(१) जूठन क्या है ?
(२) दुर्गन्ध क्या है ?
(३) मक्खियाँ क्या हैं ?
उत्तर—(१) लोभ और राग जूठन है ।
(२) द्रोह दुर्गंध है ।
(३) अकुशल वितर्क अर्थात् बुरे विचार मक्खियाँ हैं ।

२. प्रश्न—(१) जगत्‌का संयोजन क्या है ?
(२) उसकी विचारणा (चिंता) क्या है ?
(३) किस धर्मके नाशसे उसे निर्वाण प्राप्त होता है ।
उत्तर—(१) लोभ या तृष्णा जगत्‌का संयोजन है ।
(२) वितर्क उसकी विचारणा है ।
(३) तृष्णाके नाशसे जगत्‌को निर्वाण प्राप्त होता है ।

३. प्रश्न—किस प्रकारके बर्तावसे मनुष्यके विज्ञान (चित्तकी धारा) का निरोध होता है ?

उत्तर—आंतरिक और बाह्य वेदनाओंका अभिनंदन न करते हुए जो बर्तता है, उसका विज्ञान निरुद्ध हो जाता है ।

४. प्रश्न—(१) यह जगत् किससे ढका हुआ है ?
(२) किसके कारण यह प्रकाशित नहीं होता ?
(३) इसका अभिलेपन क्या है ?
(४) महाभय क्या है ?

उत्तर--(१) यह जगत् अविद्यासे ढका हुआ है ।
(२) मात्सर्य और प्रमादके कारण यह प्रकाशित नहीं होता ।
(३) वासना इसका अभिलेपन है ।
(४) जन्मादि दुःख महाभय है ।

५. प्रश्न—(१) चारों ओर जो ये प्रवाह बह रहे हैं, इनका निवारक क्या है ?
(२) प्रवाहोंका नियमन क्या है ?
(३) ये प्रवाह किस वस्तु से रोके जा सकते हैं ?

उत्तर—(१) जगत्में जो ये प्रवाह वह रहे हैं, उनकी निवारक स्मृति है ।
(२) स्मृति ही उन प्रवाहोंकी नियामक है ।
(३) प्रज्ञासे वे रोके जा सकते हैं ।

६. प्रश्न—'प्रज्ञा' और 'स्मृति' इन नाम-रूपोंका निरोध कहाँ होता है ?

उत्तर—नाम और रूपका पूर्णतः निरोध विज्ञानके निरोध से होता है ।

७. प्रश्न—संसारकी ओर मनुष्य किस प्रकार देखे, कि जिससे मृत्युराज उसकी ओर न देख सके ?

उत्तर—सदैव स्मृति रखते हुए इस तरह देखे कि जगत् शून्य है । इस भाँति आत्म-दृष्टिको त्याग देनेवाला मनुष्य मृत्युको पार कर जाता है । इस प्रकार संसारकी ओर देखनेवाले मनुष्यकी ओर मृत्युराज नहीं देखता ।

८. प्रश्न—जो कामोपभोगोंसे विमुक्त है, तृष्णासे रहित है और संशयों को पार कर गया है, उसका मोक्ष किस प्रकारका होता है ?

उत्तर—जो कामोपभोगोंसे विमुक्त है, तृष्णासे रहित है और संशयों से पार हो गया है, उसके लिए मोक्ष-जैसा कोई पदार्थ रहा ही नहीं । (वही उसका मोक्ष है ।)

९. प्रश्न—(१) वह वासना-रहित होता है, या उसकी कोई वासना शेष रहती है ?

(२) वह प्रज्ञावान् होता है, या प्रज्ञाकी कल्पना करनेवाला ?

उत्तर—(१) वह वासना-रहित होता है, उसकी कोई वासना शेष नहीं रहती।

(२) वह प्रज्ञावान् होता है, प्रज्ञाकी कल्पना करनेवाला नहीं। वह मुनि सर्वथा कामभवमें अनासक्त और अकिंचन होता है।

१०. प्रश्न—महान् भयानक बाढ़के बीचोंबीच संसारके मध्यभागमें खडे हुए जरा-मृत्युपरायण मनुष्यके लिए कौन-सा द्वीप शरणस्थान है ?

उत्तर—आकिंचन्य और अनादान (ग्रहण न करना) ही उसके लिए महान् विशाल द्वीप है, जिसे मैं जरा और मृत्युका क्षय करनेवाला 'निर्वाण' कहता हूँ।

यह जानकर जो स्मृतिमान लोग इसी जन्ममें परिनिर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, वे मारके (विषय) वश नहीं होते, वे मारका अनुसरण नहीं करते।

*

११. प्रश्न— इस जगत्में लोग अनेकोंको मुनि कहते हैं, पर क्या उनका यह कहना ठीक है ? वे ज्ञानसंपन्न पुरुषको मुनि कहते हैं या केवल व्रतादि उपजीविका-संपन्नको ?

उत्तर—दृष्टिसे, श्रुतिसे अथवा ज्ञानसे कोई मुनि नहीं होता, ऐसा पंडितजन कहते हैं। मनके समस्त विरोधोंका नाश करके जो निर्दुःख और निस्तृष्ण होकर रहता है उसे ही मैं मुनि कहता हूँ।

१२. प्रश्न—(१) इस जगत्में किसे सतुष्ट कहना चाहिए ?

(२) तृष्णाएँ किसे नहीं हैं ?

(३) कौन दोनों अंतोंको जानकर मध्यमें स्थित हो

प्रज्ञासे लिप्त नहीं होता ?

(४) 'महापुरुष' किसे कहते हैं ?

(५) इस जगत्‌में कौन तृष्णाको पार करता है ?

उत्तर— (१) जो कामोपभोगोंका परित्याग करके ब्रह्मचारी, वीततृष्ण और सदैव स्मृतिमान् रहता है, उसे ही संतुष्ट कहना चाहिए।

(२) उसे ही तृष्णाएँ नहीं सतातीं।

(३) वह दोनों अंतोंको जानकर मध्यमें स्थित हो प्रज्ञासे लिप्त नहीं होता।

(४) उसे ही मैं महापुरुष कहता हूँ।

(५) इस जगत्‌में वही महापुरुष तृष्णा-तरंगिणी को पार कर सकता है।

१३. प्रश्न—इस जगत्‌में जो ये अनेक तरहके दुःख दिखाई देते हैं, वे कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—ये दुःख उपाधियोंसे उत्पन्न होते हैं। जो अविद्वान मंदबुद्धि मनुष्य उपाधियाँ करते हैं वे बारंबार दुःख भोगते है। अतएव दुःखका उत्पत्ति कारण जाननेवाले बुद्धिमान मनुष्यको उपाधि नही करनी चाहिए।

१४. प्रश्न—बुद्धिमान मनुष्य किस तरह ओघ (भवसागर), जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दुःखको पार करते है।

उत्तर—ऊपर, नीचे, चारों ओर और मध्यमें जो कुछ भी दिखाई देता है, उसमेंसे तृष्णा, दृष्टि और विज्ञान (चित्तधारा) को हटा देनेवाला पुरुष संसारपर आश्रय नहीं रखता।

इस प्रकार चलनेवाला स्मृतिमान्, अप्रमत्त और विद्वान् भिक्षु ममत्वको छोड़कर इसी लोकमें जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दुःख का त्याग कर देता है।

जो ब्राह्मण वेदपारग, आंकचन और कामभवमें अनासक्त होगा, वह इस संसार-सागर को विश्वासपूर्वक पार कर सकेगा।

इस जगत्में वही विद्वान् और वेदपारग मनुष्य है, वही भव और अभवमें आसक्तिका त्याग कर सकता है, वही निस्तृष्ण, निर्दुःख और वासना-रहित है, और वही जन्म, जरा और मृत्युको पार कर सकता है।

*

१५. प्रश्न—किस हेतुसे प्रेरित हो ऋषि, क्षत्रिय, ब्राह्मण और अन्य मनुष्य इस जगत्में देवताओंको उद्देश करके भिन्न-भिन्न यज्ञ करते हैं ?

उत्तर— ये सब इसलिए भिन्न-भिन्न यज्ञ करते हैं कि उनका पुनर्जन्म हो और बारबार जन्म और मरणके ग्रास बनें।

१६. प्रश्न—यज्ञ-कर्ममें अप्रमादी रहकर क्या ये लोग जन्म और जराको पार कर सकते हैं ?

उत्तर—ये लोग देवताओंकी प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, आशा प्रकट करते हैं, हवन करते हैं, और अपने लाभके लिए कामसुखकी याचना करते हैं। यज्ञमें फँसे हुए ये भवलोभासक्त मनुष्य जन्म और जरा को कदापि पार नहीं कर सकते।

१७. प्रश्न—तो फिर देवलोक और नरलोकमें कौन मनुष्य जन्म और जराको पार कर सकता है ?

उत्तर—संसारकी छोटी-बड़ी सभी वस्तुओंको प्रज्ञासे जानकर जिस मनुष्यने अपनी तमाम तृष्णाएँ नष्ट कर दी हैं, जो शात, वीतधूम, रागादि-विरत और आशा-रहित है, वही जन्म और जराको पार कर सकता है।

१८. प्रश्न—राग और दोष कहाँ उत्पन्न होते हैं ? अरति, रति और हर्ष कहाँसे पैदा होते हैं ?

मनमें वितर्क कहाँसे होता है, जिससे यह मन उस पतंगके समान मँडराता रहता है, जिसे बालक इधर-उधर उड़ाया करते हैं ?

उत्तर—यही आत्मा राग और दोषका निदान है। इसीसे अरति, रति और हर्ष उत्पन्न होते हैं। इसीसे मनमें वितर्क उत्पन्न होता है। यह उस पतंगके अनुसार है, जिसे अबोध बालक इधर-उधर उड़ाया करते हैं।

ये राग आदि स्नेहसे आत्मामें न्यग्रोधके (बरगद) स्कंधके समान उत्पन्न होते हैं और कामोंमें 'मालू' नामक लताकी भाँति लपटते रहते हैं।

जो इनका निदान जानते हैं वे आनंद-लाभ करते हैं; और इस संसार-समुद्रको, जो अत्यंत दुस्तर है, पार करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं; और उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

१९. प्रश्न—(१) श्रेष्ठ धन कौन-सा है?
(२) सुचिर सुख देनेवाला कौन है?
(३) जगत्में अत्यंत स्वादिष्ट कौन पदार्थ है?
(४) किस प्रकारका जीवन व्यतीत करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष है?

उत्तर—(१) श्रद्धा ही श्रेष्ठ धन है।
(२) धर्म ही सुचिर सुख देनेवाला है।
(३) सत्य ही संसारमें अत्यंत स्वादिष्ट पदार्थ है।
(४) प्रज्ञासे जीवन-निर्वाह करनेवाला पुरुष ही संसारमें श्रेष्ठ है।

२०. प्रश्न—(१) ओघको कैसे पार कर सकते हैं?
(२) मृत्यु-महोदधिके उस पार किसके सहारे जा सकते हैं?
(३) दुःखका अंत किससे कर सकते हैं?
(४) परिशुद्धि किससे होती है?

उत्तर—(१) श्रद्धासे ओघको पार कर सकते हैं।
(२) अप्रमादके सहारे मृत्यु-महोदधिके उस पार जा सुकते हैं।
(३) वीर्य (उद्योग) से दुःखका अंत हो सकता है।
(४) और, प्रज्ञासे परिशुद्धि प्राप्त हो सकती है।

२१. प्रश्न—(१) प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है?
(२) धन किससे मिलता है?

(३) कीर्ति किससे प्राप्त होती है ?

(४) किस प्रकार इस लोकसे परलोक पहुँचकर मनुष्य शोक नहीं करता ?

उत्तर—(१) श्रद्धावान् प्रमाद-विरहित कुशल पुरुष निर्वाण-की प्राप्तिके लिए आर्हत धर्मकी परिसेवा-से (उपासना) प्रज्ञा प्राप्त करता है।

(२) प्रत्युपकारी सहनशील पुरुष अप्रमादके द्वारा विपुल धन प्राप्त करता है।

(३) सत्यसे वह कीर्ति-लाभ करता है।

(४) जिस गृहस्थमें सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार धर्म होते हैं, वही इस लोकसे परलोकमें जाकर शोक नहीं करता।

*

२२. प्रश्न—(१) किन गुणोंके प्राप्त करनेसे मनुष्य भिक्षु होता है।

(२) भिक्षु सुशांत कैसे होता है ?

(३) दांत किसे कहते हैं ?

(४) बुद्धके क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—(१) जो बुद्धके सुझाये हुए मार्गसे परिनिर्वाण प्राप्त करता है, जिसे कोई शंका नहीं रहती, जो शा-श्वत दृष्टि और उच्छेद-दृष्टिका त्याग करके कृतकृत्य हो जाता है और पुनर्जन्मका क्षय कर देता है, वही भिक्षु है।

(२) जो हर जगह उपेक्षायुक्त और स्मृतिमान् होकर इस अखिल जगत्में किसीकी भी हिंसा नहीं करता, जो उत्तीर्ण और विमुक्त हो गया है, और जिसमें न राग रहा है न द्वेष, वही सुशांत है।

(३) इस अखिल जगत्में जिसकी इंद्रियाँ वाहरसे तथा भीतरसे वशमें हो गई हैं, और जो भावितात्मा पुरुष उत्तम लोकोंको जानकर मृत्युकी प्रतीक्षा करता है, वही दांत है।

(४) समस्त विकल्प, संसार तथा जन्म-मरणको जानकर और विगतरज, निष्पाप एवं विशुद्ध होकर जो जन्मक्षयका लाभ करता है, उसे बुद्ध कहते हैं।

२३. प्रश्न—(१) मनुष्य किन गुणोंकी प्राप्तिसे ब्राह्मण होता है?

(२) मनुष्य श्रमण कैसे होता है?

(३) स्नातक के क्या लक्षण हैं?

(४) नाग किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) जो मनुष्य समस्त पापोंको हृदयसे निकाल वाहर कर देता है, जो विमल, समाहित और स्थितात्मा होकर संसार-सागरको लाँघ जाता है, जो 'केवली' और अनाश्रित होता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं।

(२) पुण्य और पापोंको त्यागकर जो पुरुष शांत हो गया है, इहलोक और परलोक दोनोंको जान जो विगतरज हो गया है और जो जन्म तथा मरणके उस पार चला गया है, उसे श्रमण कहते हैं।

(३) जो समस्त जगत्में वाहर और भीतरसे तमाम पापोंको पखारकर विकल्पबद्ध देवताओं और मनुष्योंके बीच विकल्पको प्राप्त नहीं होता, उसे स्नातक कहते हैं।

(४) जो इस जगत्में एक भी पाप नहीं करता और सभी संयोगों और बंधनोंको तोड़कर कहीं

भी बद्ध नहीं होता, उस पुरुषको इन गुणोंके कारण नाग कहते हैं।

२४. प्रश्न—(१) क्षेत्रजिन किसे कहते हैं ?

(२) मनुष्य कुशल कैसे होता है ?

(३) पंडितके क्या लक्षण हैं ?

(४) मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) दिव्य, मानवी और ब्रह्मक्षेत्र—इन तीनों क्षेत्रोंको जानकर जो तीनोंके मूल बंधनसे मुक्त हो गया है, उसे क्षेत्रजिन कहते हैं।

(२) दिव्य, मानवी और ब्रह्मकोश—इन तीनों कोशों-को जानकर जो तीनोंके बंधनसे मुक्त हो गया है, उसे कुशल कहते हैं।

(३) आध्यात्मिक (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन) और बाह्य आयतनों को (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म) जानकर जो विशुद्धप्रज्ञ मनुष्य पाप और पुण्यके उस पार चला गया है, उसे पंडित कहते हैं।

(४) अखिल लोकमें अध्यात्मविषयक और बाह्य-विषयक तथा साधुओं और असाधुओंका धर्म जानकर जो आसक्तिके उस पार चला गया है, उसे मुनि कहते हैं। उसकी पूजा मनुष्य क्या देवता भी करते हैं।

२५. प्रश्न—(१) किन गुणोंकी प्राप्तिसे मनुष्य वेदपारग कह-लाता है ?

(२) मनुष्य अनुविदित कैसे होता है ?

(३) वीर्यवान् के क्या लक्षण हैं ?

(४) मनुष्य आजन्य कैसे होता है ?

उत्तर—(१) श्रमण और ब्राह्मणोंके जितने वेद हैं उन सबको जानकर और उन्हें पार करके जो समस्त वेद-नाओंके विषयमें वीतराग हो जाता है, वह **वेदपारग** है।

(२) भीतर और बाहरसे रोगोंका मूल यह संसार और नामरूप है, अतः सर्व रोगोंके मूल बंधनसे जो मुक्त हो जाता है, उसे **अनुविदित** कहते हैं।

(३) जो इस लोकमें समस्त पापोंसे विरत हो गया और जिसने निरय-दुःखको पार कर लिया है, वह वीर्यवान् है; इन गुणोंके कारण ही उसे **वीर्यवान्, प्रधानवान्** (प्रयत्नवान्) और **धीर** कहते हैं।

(४) भीतर और बाहरके समस्त संगकारणको तोड़कर जो सभी प्रकारकी आसक्तिके बंधनसे मुक्त होगया है उसे, इन गुणोंके कारण, **आजन्य** कहते हैं।

२६. प्रश्न—(१) किन गुणोंको प्राप्त करके मनुष्य **श्रोत्रिय** होता है?

(२) मनुष्य **आर्य** किन गुणोंसे होता है?

(३) मनुष्य **आचरणवान्** कैसे होता है?

(४) परिव्राजक किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) जितने भी निंदित और अनिंदित धर्म हैं उन सबको सुनकर और जानकर जो मनुष्य उनपर विजय प्राप्त करके निःशंक, विमुक्त और सर्वथा निर्दुःख हो जाता है, उसे **श्रोत्रिय** कहते हैं।

(२) जो विद्वान् मनुष्य आस्रवों और आलयोंका उच्छेद करके गर्भवासकी जड़ काट डालता है, और जो त्रिविध (काम, रूप और अरूप) पंकमय संज्ञाको लाँघकर विकल्पको प्राप्त नहीं होता, वह **आर्य** है।

(३) जिसने आचरणमें पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है, जिसे कुशल धर्मोंका पूर्णज्ञान है, और जो कहीं भी बद्ध नहीं होता, जो विमुक्त है और जिसमें प्रत्याघातबुद्धिका सर्वथा अभाव है, वह आचरणवान् है।

(४) ऊपर, नीचे और चारों ओर अथवा मध्यमें जितने भी दुःखकारक कर्म हैं, उन्हें त्यागकर जो विचारपूर्वक बर्तता है, जिसने माया, मान, क्रोध और नामरूपको नष्ट कर दिया है उस पूर्णत्व-प्राप्त पुरुषको परिव्राजक कहते हैं।

२७. प्रश्न—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर कहाँसे उत्पन्न होते हैं? और अहंकार, अतिमान तथा कलंकका उत्पत्ति-स्थान क्या है?

उत्तर—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर एवं अहंकार, अतिमान तथा कलंकका उत्पत्ति-स्थान प्रियवस्तुएँ हैं।

२८. प्रश्न—(१) इस जगत् मे वस्तुएँ प्रिय कैसे होती हैं?
(२) यह लोभ किससे पैदा होता है?
(३) लोगोंके लड़ाई-झगड़ोंकी जड यह आशा और निष्ठा किससे उत्पन्न होती है?

उत्तर—(१) इस जगत्में राग (छंद) के कारण वस्तुएँ प्रिय होती हैं।
(२) रागकी बदौलत यह लोभ पैदा होता है।
(३) यह राग ही तमाम लड़ाई-झगड़ोंकी जड़, आशा और निष्ठाका जनक है।

२९. प्रश्न—(१) जगत्में राग कहाँसे उत्पन्न होता है?
(२) योजनाएँ कहाँसे उत्पन्न होती हैं?
(३) क्रोध, लुचाई, कुशंका और दूसरे दोष कहाँसे पैदा होते हैं?

उत्तर—(१) जगत्में जिन्हें सुख और दुःख कहते हैं, उन्हींसे

राग पैदा होता है।

(२) रूपों में हानि और लाभ देखकर जगत्में मनुष्य योजनाएँ बनाया करता है।

(३) क्रोध, लुच्चाई, कुशंका और दूसरे दोष भी सुख-दुःखके ही कारण उत्पन्न होते हैं।

३०. प्रश्न—(१) सुख और दुःख होनेका क्या कारण है?

(२) किन वस्तुओंके नष्ट हो जानेसे सुख-दुःख उत्पन्न नहीं होते?

(३) लाभ और हानिका उत्पत्ति-स्थान क्या है?

उत्तर—(१) सुख और दुःखका कारण स्पर्श है। स्पर्शसे ही ये सुख-दुःख पैदा होते हैं।

(२) स्पर्श न हो तो ये भी पैदा न हों।

(३) लाभ और हानिका भी उत्पत्ति-स्थान यह स्पर्श ही है।

३१. प्रश्न—(१) जगत्में स्पर्श कहाँ से पैदा होता है?

(२) परिग्रह किससे उत्पन्न होता है?

(३) और, किसके नाशसे यह स्पर्श उत्पन्न नहीं होता?

उत्तर—(१) नाम और रूपके आश्रयसे स्पर्श पैदा होता है।

(२) इच्छाके कारण परिग्रह उत्पन्न नहीं होता है। यदि इच्छा नष्ट हो जाय, तो फिर ममत्व न रहे।

(३) रूप-विचार नष्ट होजानेसे स्पर्श उत्पन्न नहीं होता।

३२. प्रश्न—(१) रूप-विचार किन गुणोंके युक्त होनेसे नष्ट होता है?

(२) सुख और दुःखका नाशक क्या है?

(३) इनका कैसे नाश होता है?

उत्तर—इन प्रश्नोंका एक ही उत्तर है। जो संज्ञाका* विचार नहीं

---

* इंद्रिय और विषय के एकसाथ मिलनेपर, अनुकूल-प्रतिकूल

करता, अथवा असंज्ञाका भी विचार नहीं करता, जो असंज्ञी भी नहीं, और रूप-संज्ञी भी नहीं, उसका रूप-विचार नष्ट हो जाता है। कारण यह है कि प्रपंचकी कल्पना इस संज्ञासे ही पैदा होती है।

३३ प्रश्न—(१) मुनिके क्या लक्षण हैं?
(२) केवली किसे कहते हैं?
(३) मनुष्य बुद्ध कैसे होता है?

उत्तर—(१) जो पूर्वजन्मोंको तथा स्वर्ग और नरकको जानता है, जिसका जन्मक्षय हो गया है, और जो अभिज्ञा-तत्पर है, वही मुनि है।

(२) रोगोंसे जो सर्वथा मुक्त है, जो चित्तकी विशुद्धिको जानता है, जिसका जन्म-मरण नष्ट और ब्रह्मचर्य पूर्ण हो गया है, उसे केवली कहते हैं।

(३) जिसने समस्त धर्मोंको पार कर लिया है, उसे बुद्ध कहते हैं।

---

१. अं. नि. (३: ३: ६) २—१७. सु. नि. (पारायण वग्ग) १८—१६. बुद्धदेव (ना. प्र. का.) २०—२१. सु. नि. २२—२६. सु. नि. (सभियसुत्त) २७—३२. सु. नि. (कलहविवाद सुत्त) ३३. म. नि. (ब्रह्मायु सुत्तंत)

अंतिम उपदेश

१. भिक्षुओ! जहाँतक तुम लोग बराबर एकत्र होकर संघका कार्य करते रहोगे, जबतक तुममें ऐक्य रहेगा, ऐक्यसे तुम सघके सब कृत्य करते रहोगे, जहाँतक संघके किसी नियमका भंग नहीं करोगे, जहाँतक तुम अपने सघके वृद्ध भिक्षुओंको मान देते रहोगे, जहाँतक तुम अपनी तृष्णाकी

वेदनाके बाद, यह अमुक विषय है, इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे संज्ञा कहते हैं।

अधीनता स्वीकार न करोगे, जहाँतक तुम एकांतवासमें आनंद मानोगे, और जबतक तुम इस बातकी चिंता रखोगे कि तुम्हारे सब साथी सुखी रहें, तबतक तुम्हारी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी, अवनति नहीं।

२. भिक्षुओ! अभ्युन्नतिके ये सात नियम मैं बता देता हूँ, इन्हें ध्यानपूर्वक सुनो :—

(१) गृहसंबंधी निजी काममें आनंद न मानना;
(२) व्यर्थका बकवाद करनेमें आनंद न मानना;
(३) निद्रामें समय बितानेमें आनंद न मानना;
(४) भीड़भाड़ पसंद करनेवाले भिक्षुओंके साथ समय बितानेमें आनंद न मानना;
(५) दुर्वासनाओंके वश न होना;
(६) दुष्टोंकी संगतिमें न पड़ना;
(७) समाधिमें अल्प सफलता पाकर उसे बीचमें ही न छोड़ देना।

३. भिक्षुओ! अभ्युन्नतिके और भी सात नियम कहता हूँ, उन्हें सुनो :—

(१) श्रद्धालु बने रहना;
(२) पाप-कर्मसे लजाते रहना;
(३) लोकापवादका भय रखना;
(४) विद्याका संचय करना;
(५) सत्कर्म करनेमें उत्साह रखना;
(६) स्मृतिको जाग्रत बनाये रखना;
(७) प्रज्ञावान रहना।

४. शीलभ्रष्ट मनुष्यकी पाँच प्रकारसे हानि होती है :—

(१) दुराचरणसे उसकी संपत्तिका नाश होता है;
(२) उसकी अपकीर्ति फैलती है;

(३) किसी भी सभामें उसका प्रभाव नहीं पड़ता;
(४) शांतिसे वह मृत्यु नहीं पाता;
(५) मरनेके बाद वह दुर्गतिको प्राप्त होता है।

५. सदाचारी मनुष्यको, उसके सदाचरणके कारण, यह पाँच प्रकार का लाभ होता है :—

(१) सदाचरणसे उसकी संपत्तिकी वृद्धि होती है;
(२) लोकमें उसकी कीर्ति बढ़ती है;
(३) हरेक सभामें उसका प्रभाव पड़ता है;
(४) शांतिसे वह मृत्यु पाता है;
(५) मरनेके बाद वह सुगतिको प्राप्त होता है।

*

६. अब तुम लोग अपनेको ही अपना अवलंबन बनाओ। इस संसार-समुद्रमें अपनेको ही द्वीप बनाओ, धर्मको अपना द्वीप बनाओ। अपनी ही शरण जाओ, और धर्मकी शरण में जाओ।

जो पुरुष मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा इन चार स्मृत्युपस्थानों-की भावना करता है, वह अपने लिए द्वीप बना लेता है; यही धर्म-शरण है।

*

७. भिक्षुओ! तुम्हारा ब्रह्मचर्य चिरस्थायी रहे, और यदि तुम्हे ऐसा अनुभव होता हो, कि तुम्हारे उस ब्रह्मचर्यके द्वारा बहुत-से लोगोंका कल्याण हो, बहुत-से लोगोंको सुख मिले, तो मेरे सिखाये हुए 'कुशल धर्म'का सम्यक् रीतिसे अध्ययन और उसकी शुद्ध भावना करो।

*

८. जो मनुष्य मेरे उपदेशके अनुसार सावधानीके साथ धर्मका आचरण करेगा, वह पुनर्जन्मसे छुटकारा पा जायगा, उसका दुःख नष्ट हो जायगा।

९. मेरे परिनिर्वाण पश्चात् मेरे शरीरकी पूजा करने की माथापच्चीमें

न पड़ना। मैंने तुम्हें जो सन्मार्ग बताया है, उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना।

❋

१०. तुम्हारे मन में विचार आ सकता है कि बुद्धके देहावसानके बाद हमारा कोई शास्ता (शासनकर्ता) नहीं रहा; पर मेरे न रहनेके बाद मैंने तुम्हे जिस धर्म और विनयकी शिक्षा दी है वही तुम्हारा शास्ता होगा।

❋

११. मैं तुमसे कहता हूँ कि संस्कार अर्थात् कृतवस्तु नाशवान है, अतः सावधानीके साथ जीवनके लक्ष्यका संपादन करो।

१—११. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

सूक्ति-कण

१. दूसरोंकी त्रुटियों या कृत्य और अकृत्यकी खोजमें न रहो। तुम तो अपनी ही त्रुटियाँ और कृत्य-अकृत्यों पर विचार करो।

✻

२. उस कामका करना अच्छा नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसका फल रोते-बिलखते भोगना पड़े।

✻

३. उसी कामका करना ठीक है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसका फल मनुष्य प्रसन्नचित्तसे ग्रहण करे।

✻

४. पाप-कर्म दूधकी तरह तुरन्त नहीं जम जाता, वह तो भस्म से ढकी हुई आगकी तरह थोड़ा-थोड़ा जलकर मूढ़ मनुष्यका पीछा करता है।

✻

५. जैसे महान् पर्वत हवाके झकोरोंसे विकंपित नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान लोग किसीकी निंदा और स्तुतिसे विचलित नहीं होते।

✻

६. वही पुरुष शीलवान् और धार्मिक है, जो न अपने लिए और न दूसरेके लिए पुत्र, धन आदिकी इच्छा करता है, और जो अधर्मसे अपनी समृद्धि नहीं चाहता।

✻

७. सहस्रों अनर्थक वाक्योंसे वह एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुन-[illegible]ित प्राप्त होती है।

सहस्रों अनर्थक गाथाओंसे वह एक सार्थक गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

८. जो अभिवादनशील और सदा वृद्धोंकी सेवा करनेवाले हैं, उनके ये चारों धर्म बढ़ते हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।

९. एक दिनका सदाचारयुक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौ वर्षके शील-रहित और असमाहित जीवनसे अच्छा है।

*

१०. यह समझकर पापीकी अवहेलना न करे कि 'वह मेरे पास नहीं आयेगा।' एक-एक बूँद पानीसे घडा भर जाता है। इसी तरह मूर्ख-मनुष्य अगर थोड़ा-थोडा भी पाप संचय करता है, तो वह एक दिन पाप-समुद्रमें डूब जाता है ।

*

११. जो शुद्ध, पवित्र और निर्दोष पुरुषको दोष लगाता है उस मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है, जैसे वायुके रुख फेंकी हुई धूल अपने ऊपर सहज ही आ पड़ती है।

*

१२. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है; दूसरा कौन उसका स्वामी या सहायक हो सकता है ? अपनेको जिसने भलीभाँति दमन कर लिया, वह ही एक दुर्लभ स्वामित्व प्राप्त कर लेता है।

*

१३. अनुचित और अहितकर कर्मोंका करना आसान है। हितकर और शुभकर्म परम दुष्कर हैं।

१४. जो पहले प्रमादमें था, और अब प्रमादसे निकल गया, वह इस लोकको मेघ-मालासे उन्मुक्त चंद्रमाकी भाँति प्रकाशित करता है।

*

१५. जो अपने किये हुए पापोंको पुण्यसे ढक देता है, वह इस लोक-को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे बादलोंसे उन्मुक्त चंद्रमा।

*

१६. जिसने एक इस धर्मको छोड़ दिया है, जो झूठ बोलता है, और जो परलोकका खयाल नहीं करता, उसके लिए कोई भी पाप अकरणीय नहीं ।

१७. श्रेष्ठ पुरुषका पाना कठिन है। वह हर जगह जन्म नहीं लेता। धन्य है वह सुख-संपन्न कुल, जहाँ ऐसा धीर पुरुष उत्पन्न होता है।

*

१८. विजयसे वैर पैदा होता है; पराजित पुरुष दुःखी होता है। जो जय और पराजयको छोड़ देता है, वही सुखकी नींद सोता है।

*

१९. रागके समान कोई आग नहीं; द्वेषके समान कोई पाप नहीं। पंचस्कंधोंके (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) समान कोई दुःख नहीं, और शांतिके समान कोई सुख नहीं।

*

२०. भूख सबसे बड़ा रोग है; शरीर सबसे बड़ा दुःख है—इस बातको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यथार्थमें निर्वाण ही परमसुख है।

*

२१. आरोग्य परमलाभ है। संतोष परमधन है। विश्वास परमबंधु है। और निर्वाण परमसुख है।

*

२२. सत्पुरुषोंका दर्शन अच्छा है। संतोंके साथ रहना सदा सुखकारक है। मूर्खों के अदर्शनसे (अलग रहनेसे) मनुष्य सचमुच सुखी रहता है।

*

२३. मूर्खों की संगति में रहनेवाला मनुष्य चिरकाल तक शोकनिमग्न रहता है। मूर्खोंकी संगति शत्रुओंकी तरह सदा ही दुःखदायक होती है, और धीर पुरुषोंका सहवास अपने बंधु-बाधवोंके समागमके समान सुखदायी होता है।

*

२४. सदा सच बोलना, क्रोध न करना और याचकको यथेच्छ दान देना—इन तीन बातोंसे मनुष्य देवताओंके निकट स्थान पाता है।

२५. यह पुरानी बात है; कुछ आजकी नहीं कि, जो नहीं बोलता उसकी भी लोग निंदा करते हैं, और जो बहुत बोलता है उसे भी दोष लगाते हैं। इसी तरह मितभाषीकी भी लोग निंदा करत हैं। ससारमें ऐसा कोई नहीं, जिसकी लोग निंदा न करें। बिल्कुल ही निंदित और बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न कभी हुआ, न होगा और न आजकल है।

*

२६ कायाको उद्विग्न होनेसे बचा; काया पर दमन कर; कायाके दुश्चरितको छोड़; वाणीके सुचरितका आचरण कर।

*

२७. वाणीको उद्विग्न होनेसे बचा; वाणीको संयत रख; वाणीके दुश्चरितको छोड़; वाणीके सुचरितका आचरण कर।

*

२८. मनको उद्विग्न होनेसे बचा; मनको वशमें कर; मनके दुश्चरितको छोड़; मनके सुचरितका आचरण कर।

*

२९. रागके समान कोई आग नहीं; द्वेषके समान कोई अरिष्ट ग्रह नहीं; मोहके समान कोई जाल नहीं; और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।

*

३०. जैसे सुनार चाँदीके मैलको दूर करता है, उसी तरह बुद्धिमान पुरुषको चाहिए कि वह अपने मलों (पापों) को प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा दूर करता रहे।

*

३१. यह लोहेका मुरचा ही है जो लोहेको खा जाता है। इसी प्रकार पापीके पाप-कर्म ही उसे दुर्गतिको पहुँचाते हैं।

३२. उपासनाका मुरचा अनभ्यास है। मकानका मुरचा उसकी बेमरम्मती है। शरीरका मुरचा आलस्य है, और संरक्षकका मुरचा प्रमाद है।

३३. जो प्राणियोंकी हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो संसारमें न दी हुई चीजको उठा लेता है अर्थात् चोरी करता है, जो पराई स्त्रीके साथ सहवास करता है, जो शराब पीता है, वह मनुष्य लोकमें अपनी जड़ आप ही खोदता है।

*

३४. दूसरेका दोष देखना आसान है; किंतु अपना दोष देखना कठिन है। लोग दूसरेके दोषोंको भुसके समान फटकते फिरते हैं, किंतु अपने दोषोंको इस तरह छिपाते हैं, जैसे चतुर जुआरी हरानेवाले पासेको छिपा लेता है।

*

३५. जो दूसरोंके दोषोंको सदा ही देखा करता है और हमेशा हाय-हाय किया करता है, उसकी वासनाएँ बढ़ती ही जाती हैं, और वह उनका नाश नहीं कर सकता।

*

३६. बहुत बोलनेसे कोई पंडित नहीं होता। जो क्षमाशील वैर-रहित और अभय होता है, वही पंडित कहा जाता है।

*

३७. वह धर्मधर नहीं जो बहुत बोलता है। वही धर्मधर है और वही धर्मविषयोंमें अप्रमादी है, जिसने चाहे थोड़ा ही धर्म सुना हो, पर जो धर्मका ठीक-ठीक आचरण करता है।

*

३८. यदि किसीके सिरके बाल पक जाये, तो इससे वह स्थविर या बड़ा नहीं हो जाता। उसकी उम्र भले ही पक गई हो, किंतु वह व्यर्थ ही वृद्ध कहा जाता है।

*

३९. बड़ा असलमें वही है, जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, जो मलसे रहित और धीर है।

४०. जो पुरुष ईर्ष्यालु, मात्सर्ययुक्त और शठ है, वह बहुत बोलने या सुन्दर रंग-रूप के कारण साधु नहीं हो सकता।

*

४१. साधु वही है, जिसके दोष जड़मूलसे नष्ट हो गये हैं। जो विगत-दोष और मेधावी है, वही साधु है।

*

४२. अनियमित और मिथ्याभाषी मनुष्य मूँड मुँडानेमात्रसे ही भिक्षु नहीं हो जाता। क्या ऐसा मनुष्य भिक्षु हो सकता है, जो वासना और लोभ से युक्त हो?

*

४३. वही असलमें भिक्षु है, जिसने छोटे-बड़े सब पाप त्याग दिये हैं। जिसके पाप शमित हो गये हैं, वही श्रमण कहा जाता है।

*

४४. भिक्षा माँगनेमात्रसे कोई भिक्षु नहीं होता। भिक्षु वही होता है, जो धर्मानूकूल आचरण करता है।

*

४५. जो पाप और पुण्यसे ऊँचा उठकर ब्रह्मचारी बन गया है, जो लोकमें धर्मके साथ विचरता है, उसीको भिक्षु कहना चाहिए।

*

४६. अज्ञानी और मूढ़ मनुष्य केवल मौन रहनेसे मुनि नहीं हो जाता। वही मनुष्य मुनि है, जो तराजूकी तरह ठीक-ठीक जाँच करके सुव्रतोंका ग्रहण और पापोंका त्याग करता है। जो दोनों लोकोंका मनन करता है वही सच्चा मुनि है।

*

४७. जो प्राणियोंकी हिंसा करता है वह आर्य नहीं। समस्त प्राणियों-के साथ जो अहिंसाका बर्ताव करता है वही आर्य है।

*

४८. यदि थोड़ा सुख छोड़ देनेसे विपुल सुख मिलता हो, तो बुद्धिमान् पुरुष विपुल सुखका खयाल करके उस थोड़ेसे सुखको छोड़दे ।

*

४९. दूसरेको दुःख देकर जो अपना सुख चाहता है, वह वैरके जाल-में फँसकर उससे छूट नहीं सकता ।

*

५०. ऐसे ही उन्मत्त और प्रमत्त लोगोंके आस्रव (चित्तके मल) बढ़ते हैं, जो कर्त्तव्यको छोड़ देते हैं और अकर्त्तव्यको करते हैं ।

*

५१. जो शरीरकी अनित्य गतिको नित्य विचारते हैं, जो अकर्त्तव्यसे दूर रहते और कर्त्तव्य कृत्यको करते हैं, उन ज्ञानी सत्पुरुषोंके आस्रव अस्त हो जाते हैं ।

*

५२. श्रद्धावान्, शीलवान्, यशस्वी और धनी पुरुष जिस देशमें जाता है, वहाँ वह पूजा जाता है ।

*

५३. हिमालयके धवल शिखरोंके समान संतजन दूरसे ही प्रकाशते हैं । और, असंत लोग इस तरह अदृष्ट रहते हैं, जैसे रातमे छोड़ा हुआ बाण ।

*

५४. काषाय वस्त्र पहननेवाले बहुत-से पापी और असंयमी मिलेंगे । ये सब अपने पाप-कर्मके द्वारसे नरकलोकको जायेंगे ।

*

५५. असंयमी और दुराचारी मनुष्य राष्ट्रका अन्न व्यर्थ खायें इससे तो आगमें गरम किया हुआ लोहेका लाल गोला खा जाये वह अच्छा ।

*

५६. परस्त्रीगमन करनेसे अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प रति, यही मिलता है । इसलिए मनुष्यको परस्त्री-गमन नहीं करना चाहिए ।

५७. जैसे असावधानीसे पकड़ा हुआ कुश, हाथ को काट देता है, उसी तरह असावधानीके साथ संन्यास ग्रहण करनेसे मनुष्यको नरककी प्राप्ति होती है।

*

५८. दुष्कृतका (पाप) न करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि दुष्कृत करनेवालेको पीछे पछताना पड़ता है। सुकृतका करना ही श्रेष्ठ है, जिससे मनुष्य को अनुताप न करना पड़े।

*

५९. मुनिको गाँवमें इस प्रकार विचरना चाहिए, जिस प्रकार भौंरा फूलके रंग और सुगंधको न बिगाड़ता हुआ उसके रसको लेकर चल देता है।

*

६०. कोई भी सुगंध, चाहे वह चंदनकी हो चाहे तगरकी या चमेलीकी, वायुसे उलटी ओर नहीं जाती। किंतु सत्पुरुषोंकी सुगंध वायुसे उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुषोंकी सुगंध सभी दिशाओंको सुवासित करती है।

*

६१. चंदन या तगर, कमल या जूही इन सबकी सुगंधसे सदाचारकी सुगंध श्रेष्ठ है।

*

६२. तगर और चंदनकी जो गंध है वह अल्पमात्र है, और जो सदाचारियोंकी उत्तम गंध है, वह देवताओंतक पहुँचती है।

*

६३. चाहे कितनी ही धर्मसंहिताओंका पाठ करे, किंतु प्रमादी मनुष्य उन संहिताओंके अनुसार आचरण करनेवाला नहीं होता; अतः वह श्रमण अर्थात् साधु नहीं हो सकता। वह तो उस ग्वालेके समान है, जो दूसरोंकी गायोंको गिनता रहता है।

६४. जो पुरुष राग-द्वेषादि कषायों (मलों) को बिना छोड़े ही काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर लेता है, और जिसमें न संयम है न सत्य वह काषाय वस्त्र धारण करनेका अधिकारी नहीं।

६५. जिसने कषायों (मलों) का त्याग कर दिया है, जो सदाचारी, संयमी और सत्यवान है वही काषाय वस्त्र धारण कर सकता है।

६६. जिस प्रकार कलछी दाल-तरकारीके स्वादको नहीं समझ सकती, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य सारी जिंदगी पंडितोंकी सेवामें रहकर भी धर्म और ज्ञानका रस प्राप्त नहीं कर सकता।

६७. जिस प्रकार जीभ दाल-तरकारीको चखते ही स्वाद पहचान लेती है, उसी प्रकार विज्ञपुरुष पंडितोंकी सेवामें मुहूर्तमात्र रहकर भी धर्म और ज्ञानको प्राप्त कर लेता है।

६८. जबतक पापका परिपाक नहीं होता, तभीतक मूर्ख मनुष्यको वह मधु-सा मीठा लगता है। किंतु जब पाप कर्मके फल लगने लगते हैं, तब उस मूर्खको भारी क्लेश होता है।

६९. जिसके पास कोई मालमत्ता नहीं, जो संचय करना नहीं जानते; जिनका भोजन नियत है, जिन्हें जगत् शून्यता-स्वरूप दिखाई देता है, और जिन्होंने निर्वाणपद प्राप्त कर लिया है, उनकी गति उसी प्रकार मालूम नहीं हो सकती, जिस प्रकार आकाशमें पक्षियोंकी गति।

७०. सौ वर्षके आलसी और हीनवीर्य जीवनकी अपेक्षा एक दिनका दृढ कर्मण्यताका जीवन कहीं अच्छा है।

७१. न आकाशमें, न समुद्रमें, न पर्वतोंकी खोहमें कोई ऐसा ठौर है, जहाँ पापी प्राणी अपने किये हुए पाप-कर्मों से त्राण पा सके।

७२. बुढ़ापेतक सदाचारका पालन करना सुखकर है। स्थिर श्रद्धा सुखकर है। प्रज्ञा का लाभ सुखकर है। और पापकर्मों का न करना सुखकर है।

७३. जिसने हाथ, पैर और वाणी को संयममें रखा है, वही सर्वोत्तम संयमी है। मैं उसीको भिक्षु कहता हूँ, जो अपने में मस्त है, जो सयत है एकातसेवी है और संतुष्ट है।

७४. जिस भिक्षुकी वाणी अपने वशमें है, और जो थोड़ा बोलता है, जो उद्धत नहीं है, और धर्मको प्रकाश में लाता है, उसीका भाषण मधुर होता है।

७५. न तो अपने लाभका तिरस्कार करे, और न दूसरोंके लाभकी स्पृहा।

७६. इस नाम-रूपात्मक जगत्में जिसे बिल्कुल ही ममता नहीं, और जो किसी वस्तुके न मिलने पर उसके लिए शोक नहीं करता, वही सच्चा भिक्षु है।

७७. ध्यानमें रत रहो, प्रमाद मत करो। तुम्हारा चित्त भोगोंके चक्करमें न पड़े। प्रमादके कारण तुम्हे लोहेका लाल-लाल गोला न निगलना पडे। और दुःखकी आगसे जलते समय तुम्हें यह कहकर क्रन्दन न करना पड़े कि 'हाय, यह दुःख है।'

७८. जैसे जूहीकी लता कुम्हलाये हुए फूलोंका त्याग कर देती है, वैसे ही तुम राग और द्वेषको छोड दो।

७६. अपनेको अपने आप उठा, अपनी आप परीक्षा कर। इस प्रकार तू अपनी आप रक्षा करता हुआ विचारशील हो सुखपूर्वक इस लोकमे विहार करेग।

*

८०. मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, आप ही अपनी गति है। इसलिए तू अपनेको संयममें रख, जैसे बनिया अपने घोडेको अपने काबूमें रखता है।

*

८१. धर्मपूर्वक माता-पिताका भरण-पोषण करे, धर्मपूर्वक व्यवहार और वाणिज्य करे। गृहस्थोंको इस प्रकार आलस्य और प्रमाद छोडकर अपना धर्म-पालन करना चाहिए।

*

८२. दुःखका समूल नाश करनेके लिए ब्रह्मचर्यका व्रतपालन अत्यंत आवश्यक है।

*

८३. हंस, क्रौंच, मोर, हाथी और मृग ये सभी पशु-पक्षी सिंहसे भय खाते हैं। कौन शरीरमें बडा है और कौन शरीरमें छोटा, यह तुलना करना व्यर्थ है।

इसी प्रकार मनुष्योंमें बौने शरीरका होते हुए भी यदि कोई प्रज्ञावान् है, तो वही वास्तवमें बड़ा है। भारी भरकम शरीरके होते हुए भी मूर्ख मनुष्यको हम बडा नहीं कह सकते।

*

८४. संसर्ग होनेसे स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेहसे दुःख होता है। यह स्नेह ही दोष है, ऐसा समझकर गैडाके सींगकी तरह एकाकी ही रहना चाहिए।

८५. देख, यह आसक्ति है; इसमें सुख थोडा है, आस्वाद कम है, और दुःख अधिक। सावधान! यह मछली फँसानेका आँकडा है।

८६. जैसे कोई मनुष्य किसी प्रचंड धारकी नदीमें उतरकर तैर न सकनेके कारण वह जाता है और दूसरोंको पार नहीं उतार सकता, वैसे ही जिस मनुष्यने धर्मज्ञानका संपादन नहीं किया, और विद्वानोंके मुखसे अर्थपूर्ण वचन नही सुने, जो स्वयं ही अज्ञान और संशयमें डूबा हुआ है, वह दूसरों का किस प्रकार समाधान कर सकता है ?

*

८७. समाधान तो वह ज्ञानी पुरुष कर सकता है, जो विद्वान्, संयतात्मा, बहुश्रुत तथा अप्रकंप्य होता है, और जिसने श्रोतावधानके द्वारा निर्वाणज्ञान का संपादन किया है।

*

८८. तू तो निष्काम निर्वाणका चिंतन कर और अहंकारी वासना छोड़दे। अहंकारका त्याग करने पर ही तुझे सुचिर शाति मिलेगी।

८९. जो निंदनीय मनुष्यकी प्रशसा अथवा प्रशंसनीय पुरुषकी निंदा करता है, वह अपने ही मुखसे अपनी हानि करता है, और इस हानिके कारण उसे सुख प्राप्त नहीं होता।

*

९०. जुएमें धन गँवानेसे जो हानि होती है वह कम है, किंतु सत्पुरुषोंके संबंध मे अपना मन कलुषित करना तो सर्वस्व-हानिसे भी बढ़कर आत्म-हानि है।

*

९१. मूर्ख मनुष्य दुर्वचन बोलकर खुद ही अपना नाश करते हैं।

*

९२. जो छिछला या छिछोरा होता है वही ज्यादा आवाज करता है, पर जो गंभीर होता है, वह शात रहता है। मूर्ख अधभरे घड़ेकी तरह शोर मचाते हैं, पर प्रज्ञावान् गंभीर मनुष्य सरोवरकी भांति सदा शांत रहते हैं।

९३. जो संयतात्मा पुरुष सब कुछ जानते हुए भी बोलते नहीं हैं, वे ही मुनि मौनव्रत के योग्य हैं।

६४. यह अविद्या ही महान् मोह है, जिसके कारण मनुष्य चिरकालसे संसार में पड़ा है। किन्तु जो विद्यालाभी प्राणी होता है, वह बारबार जन्म नहीं लेता।

६५. जो भी दुःख पैदा होता है, वह सब संस्कारोंसे ही पैदा होता है; संस्कारोंके निरोधसे दुःखकी उत्पत्ति असंभव हो जाती है।

*

६६. इस सारे प्रपञ्चका मूल अहंकार है। इसका जड़मूलसे नाश कर देना चाहिए। अहंकारके समूल नाशसे ही अंतःकरणमें रमनेवाली तृष्णाओंका अंत हो सकता है।

*

६७. अनात्मामें आत्मा है, ऐसा माननेवाले और नामरूपके बंधन में पड़े हुए इन मूढ़ मनुष्योंकी ओर तो देखो, वे यह समझते हैं कि 'यही सत्य है।

६८. वे जिस-जिस प्रकारकी कल्पना करते हैं उससे वह वस्तु भिन्न प्रकारकी होती है और उनकी कल्पना झूठी ठहरती है; क्योंकि जो क्षण-भंगुर होता है वह नश्वर तो है ही।

६९. पर आर्य लोग मानते हैं कि निर्वाण अविनश्वर है और वही सत्य है; और वे सत्यज्ञानके बलपर तृष्णारहित होकर निर्वाण-लाभ करते हैं।

*

१००. जिस प्रकार साँपके फनसे हम अपना पैर दूर रखते हैं, उसी प्रकार जो कामोपभोगसे दूर रहता है वह स्मृतिमान् पुरुष इस विषभरी तृष्णाका त्याग करके निर्वाण-पथकी ओर अग्रसर होता है।

१०१ वासना ही जिसका उद्देश्य हो, और संसारी सुखोंके बन्धनमें जो पड़ा हुआ हो, उसे छुड़ाना कठिन है; क्योंकि जो आगे या पीछेकी आशा रखता है और अतीत या वर्तमान कालके कामोपभोगमें लुब्ध रहता है, उसे कौन छुड़ा सकता है?

१०२. सोने-चाँदीके लाखों-करोड़ों सिक्कोंको मैं श्रेष्ठ धन नहीं कहता। उसमें तो भय-ही-भय है—राजाका, अग्निका, जलका, चोरका, लुटेरेका और अपने सगे-संबंधियोंतकका भय है।

*

१०३. श्रेष्ठ और अचंचल तो मैं इन सात धनोंको मानता हूँ—श्रद्धा, शील, लज्जा, लोक-भय, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा। इस सप्तविध धनको कौन लूट सकता है, और कौन छीन सकता है?

*

१०४. लोभ, द्वेष और मोह ये पापके मूल हैं; अलोभ, अद्वेष और अमोह ये पुण्यके मूल हैं।

*

१०५. ये जो चंद्र और सूर्य आकाश-मंडलमें प्रकाशित हो रहे हैं और ब्राह्मण जिन्हें नित्य स्तोत्रोंके गानसे रिझाते और पूजते हैं, उन चंद्र-सूर्यकी ओर जानेका मार्ग क्या ये ब्राह्मण बतला सकेंगे?

जिन चंद्र-सूर्यको ये ब्राह्मण प्रत्यक्ष देख सकते हैं, उनतक पहुँचने का मार्ग जब वे न जान ही सकते हैं, न बतला ही सकते हैं, तो उस ब्रह्मसायुज्यताके मार्गका वे क्या उपदेश करेंगे, जिसे न उन्होंने ही कभी देखा है और न उनके आचार्योंने ही? यदि ब्रह्मसायुज्यताके मार्गका वे उपदेश करते हैं तो यह एक विचित्र ही बात है!

*

१०६. जो स्मृतिमान् मनुष्य अपने भोजनकी मात्रा जानता है उसे अजीर्णकी तकलीफ नहीं होती। वह आयुका पालन करते-करते बहुत वर्षों के बाद वृद्ध होता है।

*

१०७. कोई-कोई स्त्री तो पुरुषसे भी श्रेष्ठ निकलती है। यदि वह बुद्धिमती, सुशीला और बड़ों का आदर करनेवाली तथा पतिव्रता हो तो उसे कौन दोष दे सकता है? उसके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेता है वह

शूर-वीर होता है। ऐसी सद्भाग्यवती स्त्रीके गर्भसे जन्म लेनेवाला पुत्र साम्राज्य चलानेकी पात्रता रखता है।

*

१०८. कृपणके धनकी कैसी बुरी गति होती है? कृपण मनुष्यसे उसके जीवन-कालमें किसीको सुख नहीं पहुँचता, उसका इकट्ठा किया हुआ सारा धन अन्तमें राजाके खजानेमें जाता है, या चोर लूट लेते हैं, अथवा उसके शत्रु ही उसे तितर-बितर कर देते हैं।

कृपणके धनकी वैसी ही गति होती है, जैसी जंगलके उस तालाबकी जिसका पानी किसीके काम नहीं आता, और वह वहींका-वहीं सूख जाता है।

*

१०९. जरा और मरण तो भारी भारी पर्वतोंसे भी भयंकर हैं। हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिकोंकी चतुरंगिणी सेनासे कहीं जरा और मृत्युकी पराजय हो सकती है? जरा और मृत्युके घर यह भेदभाव नहीं कि यह ब्राह्मण है और यह चांडाल।

*

११०. सदाचार-रत मनुष्य इस लोकमें प्रशंसा पाता है, और परलोकमें सद्गति।

*

१११. अपने हाथसे कोई अपराध हो गया हो तो उसे स्वीकार करना, और भविष्यमें फिर कभी वह अपराध न करना, यह आर्य गृहस्थका कर्त्तव्य है।

*

११२. धर्मको जानकर जो मनुष्य वृद्धजनोंका आदर-सत्कार करते हैं, उनके लिए इस लोकमें प्रशंसा है और परलोकमें सुगति।

*

११३. भिक्षुओ! मैं तुम्हारी सेवा न करूँगा तो कौन करेगा? यहाँ तुम्हारी माता नहीं, पिता नहीं, जो तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करते। तुम एक

दूसरे की सेवा न करोगे, तो फिर कौन करेगा? जो रोगीकी सेवा करता है वह मेरी ही सेवा करता है।

*

११४. लोभके फंदेमें फँसा हुआ मनुष्य हिंसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, और दूसरों को भी वैसा ही करनेके लिए प्रेरित करता है।

*

११५. तुम खुद अपनी आँखसे देखो, कि यह धर्म अकुशल है, अतः त्याज्य है: इसे हम ग्रहण करेंगे तो हमारा अहित ही होगा। अकुशल धर्मका त्याग और कुशल धर्मका ग्रहण, दोनो तुम अपनी प्रज्ञासे करो—श्रुतसे या मत-परम्परासे नहीं; प्रामाण्य शास्त्रोंकी अनुकूलतासे या तर्कके कारण नहीं; न्यायके हेतुसे या अपने चिरचिंतित मत केअनुकूल होनेसे नहीं और वक्ताके आकार अथवा उसके भव्यरूपसे प्रभावित होकर भी नहीं।

*

११६. मुक्त पुरुष सर्वदा सुखकी नींद सोता है। रागादिसे रहित नितात अनासक्त और निर्भय पुरुष आतरिक शातिमें विहार करता हुआ सदैव सुखकी नींद सोता है।

*

११७. कटु-वाक्यको सुनकर हमें उसे मनमें न लाना चाहिए।

११८. हानि-लाभको न देखकर सौ वर्ष जीनेकी अपेक्षा हानि-लाभ को देखते हुए एक दिनका जीना अच्छा है।

११९. जो परवश है वह सब दुःख है। सुख तो एक स्ववशतामें ही है।

१२०. मूर्ख तबतक नहीं समझता, जबतक कि वह पापमें पचता नहीं। पापमे जब वह पचने लगता है, तभी उसकी समझमे आता है कि अरे, यह तो पाप-कर्म है।

१२१. हत्याका फल हत्या है, निंदाका फल निंदा है और क्रोधका फल क्रोध। जो जैसा करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है।

*

१२२. रंग या रूपसे मनुष्य सुज्ञेय नहीं होता। किसीको देखते ही उसपर विश्वास न कर लेना चाहिए। रूप और रंगसे कितने ही मनुष्य सयमी-से मालूम होते हैं।

*

१२३. ऐसे बने हुए मनुष्य मिट्टीके नकली कुंडलकी तरह या सोनेसे मढे हुए तांबेके टुकड़ेकी तरह होते हैं। ऊपरसे सुंदर किंतु भीतरसे वे महान् अशुद्ध होते हैं।

*

१२४. तुझे इस बातका अभ्यास करना चाहिए कि मेरे चित्तमें विकार नहीं आने पायेगा, मुँहसे दुर्वचन नहीं निकालूँगा, और द्वेषरहित हो मैत्रीभावसे इस संसारमें विचरण करूँगा।

*

१२५. तुम्हारे लिए दो ही कर्त्तव्य हैं—एक तो धर्म-वचनका मनन और दूसरा आर्य तूष्णीभाव, अर्थात् उत्तम मौन।

*

१२६. उनके लिए अमृतका द्वार बंद है, जो कानोंके होते हुए भी श्रद्धाको छोड देते हैं।

१२७. जिन जीवोंके समस्त आस्रव अर्थात् मल नष्ट हो जाते हैं, उन्हींको 'जिन' कहते हैं।

*

१२८. परमलाभ आरोग्य है और परमसुख निर्वाण।

*

१२९. सत्य-प्राप्तिका उपकारी धर्म प्रयत्न है। मनुष्य प्रयत्न न करे तो फिर सत्यकी प्राप्ति कहाँसे हो?

और, प्रयत्नका उपकारी धर्म उद्योग है। बिना उद्योगके मनुष्य प्रयत्न नहीं कर सकता।

*

१३०. उच्चकुलमें जन्म लेनेसे लोभ थोड़ा ही नष्ट हो जाता है। उच्चकुलमें जन्म लेनेसे न द्वेष ही नष्ट होता है, न मोह ही।

१३१. उच्चकुलमें भले हो न जन्म लिया हो, किंतु यदि मनुष्य धर्ममार्ग पर आरूढ़ होकर धर्मका ठीक-ठीक आचरण करता है, तो वह प्रशंसनीय है, पूज्य है।

*

१३२. जो मनुष्य अपनी उच्चकुलीनताका अभिमान करता है और दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है, वह प्रव्रज्या ले लेने पर भी 'असत्पुरुष' ही कहलायेगा।

१३३. यह वृक्षोंकी छाया है, यह शून्य गृह है। प्रमाद मत करो, ध्यान करो।

*

१३४. चाहे गृहस्थ हो चाहे संन्यासी, यदि वह मिथ्या प्रतिज्ञावाला है, तो वह मिथ्या प्रतिपत्ति (मिथ्याचरण) के कारण कुशल धर्मका आराधक नहीं हो सकता।

*

१३५. उलीचो, उलीचो, इस नावको उलीचो; उलीचनेसे तुम्हारी यह नाव हल्की हो जायगी, और तभी जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेषका छेदन करके ही तुम निर्वाणपद पा सकोगे।

*

१३६. काट डालो वासनाके इस बीहड़ वनको; एक भी वृक्ष न रहने पाये। यह महाभयंकर वन है। जब वन और उसमें उगनेवाली झाड़ियोंको काट डालोगे, तभी तुम निर्वाणपद पाओगे।

*

१३७. आत्मस्नेहको इस तरह काटकर फेंक दे, जिस तरह लोग शरद् ऋतुके कुमुदको हाथसे तोड़ लेते हैं। शांतिके मार्गका आश्रय ले—यह बुद्ध द्वारा उपदिष्ट मार्ग है।

*

१३८. बुद्धके निर्दिष्ट मार्गपर वही चल सकता है, जो मन, वचन और कायाको पापोंसे बचाता है।

*

१३९. यह ब्रह्मचर्य न तो आदर-सत्कार प्राप्त करनेके लिए है, न शील-सपत्ति प्राप्त करनेके लिए—और न समाधि-संपत्ति या प्रज्ञा प्राप्त करनेके लिए है। यह ब्रह्मचर्म तो आत्यंतिक चित्त-विमुक्ति अर्थात् निर्वाणपद प्राप्त करनेके लिए है। आत्यंतिक चित्त-विमुक्ति ही ब्रह्मचर्यका सार है, और यही ब्रह्मचर्यव्रतका पर्यवसान भी है।

*

१४०. जिस श्रद्धालु गृहस्थमें सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार गुण हैं, वह इस लोकसे परलोकमें जाकर शोक नहीं करता।

*

१४१. वही बात बोलनी चाहिए, जिससे अपनेको संताप न हो, और जिससे किसीको दुःख न पहुँचे। यही सुभाषित वाक्य है।

*

१४२. वही प्रिय बात बोलनी चाहिए, जो आनन्ददायक हो; और ऐसा न हो कि दूसरेके लिए प्रिय बात बोलनेसे पाप लगे।

१४३. सत्य अमृतवाणी है, यही सनातन नियम है।

१४४. सतोंने कहा है कि सुभाषित वाक्य ही उत्तम है। धर्मकी बात कहना, अधर्म की न कहना यह दूसरा सुभाषण है। प्रिय बोलना, अप्रिय न बोलना, यह तीसरा सुभाषण है। सत्य बोलना, असत्य न बोलना, यह चौथा सुभाषण है।

*

१४५. भिक्षुओ ! अब तुम लोग जाओ, घूमो; बहुजनके हितके लिए; बहुजनके सुखके लिए ; देवताओं और मनुष्योंके कल्याणके लिए घूमो । कोई दो भिक्षु एक तरफ न जाना । तुम लोग, उस धर्मका उपदेश करो, जो आदिमें कल्याणकारी है, मध्यमें कल्याणकारी है और अंतमें कल्याणकारी है ।

---

१. ध. प. (पुप्फवग्गो) २—४ ध. प. (बालवग्गो) ५—६ ध. प. (पण्डितवग्गो) ७—६ ध. प. (सहस्सवग्गो) १०—११ ध. प. (पापवग्गो) १२—१३ ध. प. (अत्तवग्गो) १४—१६ ध. प. (लोकवग्गो) १७ ध. प. (बुद्धवग्गो) १८—२३ ध. प. (सुखवग्गो) २४—२८ ध. प. (कोधवग्गो) २६—३५. ध. प. (मलवग्गो) ३६—४७ ध. प. (धम्मट्ठ वग्गो) ४८—५३ (पकिण्णक वग्गो) ५४—५८ ध. प. (निरयवग्गो) ५६—६२ ध. प. (पुप्फवग्गो) ६३—६५ ध. प. (यमकवग्गो) ६६—६८. ध. प. (बालवग्गो) ६६. ध. प. (अर्हतवग्गो) ७०. ध. प. (सहस्सवग्गो) ७१. ध. प. (पापवग्गो) ७२. ध. प. (नागवग्गो) ७३—८०. ध. प. (भिक्खुवग्गो) ८१. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ८२—८६. सु. नि. (निदानवग्गो) (भिक्खु-संयुग) ८४—८५. सु. नि. (खग्गविषाण सुत्त) ८६—८७. सु. नि. (नावा सुत्त) ८८—६१. सु. नि. (कोकालिक सुत्त) ६२—६३. सु. नि. (नालक सुत्त) ६३—६५. सु. नि. (द्वयतानुपस्सना सुत्त) १००. सु. नि. (काम सुत्त) १०१. सु. नि. (गुहट्ठक सुत्त) १०२. सु. नि. (दुट्ठट्ठक सुत्त) १०३. अं. नि. (धन सुत्त) १०४. अं. नि. (कालाम सुत्त) १०५. दी. नि. (तेविज्ज सुत्त) १०६—११०. बु. ली. सा. सं. (कोसल संयुत्त) १११. दीं. नि. (सामञ्ञफल-सुत्त) ११२. बु. च. (अनाथपिंडक दीक्षा) ११३. बु. च. (पृष्ठ ३३८) ११४—११५. अं. नि. (३. ७. ५.) ११६. अं. नि. (३. ४. ५.) ११८. ध. प. ११६. बु. च. (विसाख सुत्त) १२०—१२१. बु. च.

(संगाय सुत्त) १२२—१२३. अं नि. (३. २. १) १२४. म. नि. (कक्चूपमसुत्तंत) १२५—१२७. म. नि. (पासरासि सुत्तंत) १२८. म. नि. (मागंदिय सुत्तंत) १२९. म. नि. (चंकि सुत्त) १३०—१३२ म. नि. (सधुरिस धम्म सुत्तन्त) १३३. स. नि. (आनंज सप्पाव सुत्तंत) १३४. स. नि. (सुभ सुत्तत) १३५. ध. प. (भिक्खु-वग्गो) १३६—१३८. ध. प. (मग्गवग्गो) १३९. म. नि. (महासारो-पम सुत्त) १४०. सु. नि. (आलवक सुत्त) १४१—१४४ सु. नि. (सुभासित सुत्त) १४५. अं. नि. (४–१–४)

कोश

अकुशल	=	पाप; दुष्कृत्य
अकंप्य	=	स्थिर
अनागामी	=	कामवासना और क्रोध इन दो संयोजनोका संपूर्णतया उच्छेद करनेवाला श्रमण
अनादान	=	अपरिग्रह
अनुत्तर	=	जिससे उत्तम कोई दूसरा न हो
अनुशय	=	मल
अभिज्ञा	=	दिव्य ज्ञान
असपत्न	=	जिसका कोई प्रतिस्पर्धी अथवा शत्रु न हो।
असमाति	=	समाधिरहित; अशात
अष्टांगिकमार्ग	=	आठ अंगोंवाला मार्ग; आठ अंग ये हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। इसे 'मध्यमा प्रतिपदा' भी कहते हैं
आयतन	=	आश्रय; बौद्ध दर्शनमें आयतन दो प्रकारके हैं—आध्यात्मिक या आंतरिक और बाह्य। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन ये आध्यात्मिक आयतन हैं। और, रूप, रस, शब्द, गंध, स्पर्श और धर्म ये बाह्य आयतन हैं।
आर्यसत्य	=	उत्तम सत्य जो चार प्रकारका है—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधका मार्ग।
आस्रव	=	मल; प्रवाह
आर्हत	=	अर्हतका धर्म
उपेक्षा	=	मध्यस्थता, तीसरा बोध्यंग

उपोसथ	=	व्रतका दिन
ओघ	=	भवसागर; ससार-प्रवाह
अंत	=	अतिसीमा
ऋद्धिपाद	=	असाधारण क्षमता या दिव्य शक्ति
कषाय	=	मल
कुशल	=	पुण्य; सत्कर्म
कोश	=	पुनर्जन्म देनेवाला कर्म
छंद	=	राग
दान्त	=	जिसने इंद्रियोंका संपूर्णतया दमन कर लिया है।
दौर्मनस्य	=	दुर्मनता; मानसिक दुःख
परिदेव	=	रोना-विलपना
पंचोपादान	=	पाँच अभिनिवेश, जो ये हैं—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान।
प्रतिपत्ति	=	मार्ग
प्रधान	=	प्रयत्न; निर्वाणसंबंधी प्रयत्न
प्रविचय	=	संग्रह; अन्वेषण
प्रव्रज्या	=	सन्यास
प्रश्रब्धि	=	शांति; एक बोध्यंग
बोध्यंग	=	निर्वाण-ज्ञानके अंग, जो सात हैं—स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा।
मार	=	शैतान
रति	=	सुखोपभोगोंके पदार्थोंमे आसक्ति
वितर्क	=	मिथ्या संकल्प
विज्ञान	—	चित्तकी धारा
वीर्य	=	उद्योग; मनोबल
वृषल	=	चाडाल
वेदना	=	इंद्रिय और विषयके एकसाथ मिलनेके बाद चित्तमे

जो दुःख-सुख आदि विकार उत्पन्न होता है
वेदना कहते हैं।

व्यापाद = क्रोध
शासन = शिक्षा; धर्म
शास्ता = गुरु
शीलव्रत = श्रमण संन्यासीके आचार और व्रत
श्रावक = गृहस्थ
श्रोतावधान = श्रद्धा और प्रज्ञापूर्वक सुनना
समाहित = एकाग्र
संबोधि = परमज्ञान; मोक्षज्ञान
संयोजन = मनका बंधन
संज्ञा = इंद्रिय और विषयके एकसाथ मिलनेपर, अनुकूल
कूल वेदनाके बाद 'यह अमुक विषय है' इस प्रक
जो ज्ञान होता है उसे संज्ञा कहते हैं।
स्कंध = समुदाय